



इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKS-187 पातञ्जल योगसूत्र



खण्ड 1	पातञ्जल योगसूत्र : समाधिपाद	7
खण्ड 2	पातञ्जल योगसूत्र : साधनपाद	77
खण्ड 3	पातञ्जल योगसूत्र : साधनपाद तथा विभूतिपाद	125

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
पूर्व कुलपति, श्री लाल बहादुर
शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत
विश्वविद्यालय
कटवरिया सराय, नई दिल्ली

प्रो. रंजन कुमार त्रिपाठी
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो. सत्यकाम
समकुलपति
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव
आचार्य, बनारस हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. देवेश कुमार मिश्र
सह आचार्य, संस्कृत संकाय
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. रमाकान्त पाण्डेय
निदेशक, मुक्त स्वाध्याय पीठ
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई
दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

डॉ. अवधेश कुमार, सहायक आचार्य, संस्कृत संकाय,
मानविकी विद्यापीठ, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली 110068

खण्ड 1 इकाई 1

डॉ. देशराज, सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, कालिन्दी
कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

खण्ड 1 इकाई 2, 3, 4, 6, 7
खण्ड 2 इकाई 8, 9, 10, 11, 12
खण्ड 3 इकाई 13, 14, 15

डॉ. मीरा शर्मा, सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

खण्ड 1 इकाई 5

पाठ्यक्रम संपादक

डॉ. अवधेश कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत संकाय,
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. अवधेश कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत संकाय,
मानविकी विद्यापीठ, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

कार्यक्रम संयोजक

डॉ. पुष्पा
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत संकाय, मानविकी विद्यापीठ,
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,
मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव
सा. नि. एवं वि. प्र., इग्नू, नई दिल्ली

सितम्बर, 2023

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2023

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित
अनुमति लिए बिना मिनियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मानविकी विद्यापीठ एवं इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में
विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग,
इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F. Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

विषय सूची

खण्ड 1 पातञ्जल योगसूत्र समाधिपाद	7
इकाई 1 योगदर्शन में पातञ्जल योगसूत्र का स्थान	9
इकाई 2 योग—अर्थ परिभाषा एवं वैशिष्ट्य	18
इकाई 3 समाधिपाद में प्रतिपादित योग वृत्तियाँ	28
इकाई 4 वृत्ति निरोध के उपाय	38
इकाई 5 समाधिपाद में वर्णित असम्प्रज्ञात एवं सम्प्रज्ञात समाधि का विवेचन	48
इकाई 6 समाधि प्राप्ति के उपाय	60
इकाई 7 ईश्वर की अवधारणा विषयक विवेचन	69
खण्ड 2 पातञ्जल योगसूत्र : साधनपाद	77
इकाई 8 साधनपाद में प्रतिपादित अष्टांग योग का परिचय	79
इकाई 9 यम—नियम के अर्थ व स्वरूप का विवेचन	88
इकाई 10 वितर्क निवारण के उपायों का विवेचन	97
इकाई 11 आसन का अर्थ व स्वरूप विवेचन	105
इकाई 12 प्राणायाम के विविध अर्थ	115
खण्ड 3 पातञ्जल योगसूत्र : साधनपाद तथा विभूतिपाद	125
इकाई 13 प्रत्याहार का स्वरूप एवं इन्द्रिय वशीकरण विवेचन	127
इकाई 14 धारणा ध्यान एवं समाधि का अर्थ, स्वरूप व वैशिष्ट्य	137
इकाई 15 विभूतिपाद में प्रतिपादित धारणा, ध्यान विषयक अवधारणा का निरूपण	148

पाठ्यक्रम परिचय

प्रिय अध्येता बन्धुओ

BSKS-187 पातंजल योगसूत्र पाठ्यक्रम 4 क्रेडिट का है जो 3 खण्डों में विभाजित है। जिसमें 15 इकाईयाँ हैं। इस पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड में आप पातंजल योगसूत्र समाधिपाद के अन्तर्गत योगदर्शन में पातंजल योगसूत्र का स्थान, योग-अर्थ परिभाषा एवं वैशिष्ट्य, समाधिपाद में प्रतिपादित योग वृत्तियाँ, वृत्ति निरोध के उपाय, समाधिपाद में वर्णित असम्प्रज्ञात एवं सम्प्रज्ञात समाधि का विवेचन, समाधि प्राप्ति के उपाय, ईश्वर की अवधारणा विषयक विवेचन इत्यादि विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

पाठ्यक्रम के द्वितीय खण्ड, पातंजल योगसूत्र साधनपाद के अन्तर्गत साधनपाद में प्रतिपादित अष्टांग योग का परिचय, यम-नियम के अर्थ व स्वरूप का विवेचन, वितर्क निवारण के उपायों का विवेचन, आसन का अर्थ व स्वरूप विवेचन, प्राणायाम के विविध अर्थ व स्वरूप का विस्तृत विवेचन आदि का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।

पाठ्यक्रम के तृतीय खण्ड पातंजल योगसूत्र साधनपाद तथा विभूतिपाद के अन्तर्गत प्रत्याहार का स्वरूप एवं इन्द्रिय वशीकरण विवेचन, धारणा ध्यान एवं समाधि का अर्थ, स्वरूप व वैशिष्ट्य, विभूतिपाद में प्रतिपादित धारणा, ध्यान विषयक अवधारणा का निरूपण इत्यादि विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

इस प्रकार तीन खण्डों तथा 15 इकाईयों में विभाजित यह पाठ्यक्रम आप की ज्ञान परिधि का विस्तार करने में उपयोगी सिद्ध होगा। सभी इकाईयों में काठिन्य निवारण हेतु शब्दावली दी गई है जिसके माध्यम से आप कठिन शब्दों के अर्थ जानकर विषय को हृदयंगम कर पायेंगे। इकाई के पढ़ने के पश्चात् इकाईगत विषयों को कितना समझ पाये हैं इसका ज्ञान बोध प्रश्नों तथा अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से होगा। जिससे आप को सकारात्मकता तथा सन्तुष्टि की प्राप्ति होगी। परिणाम स्वरूप आप अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। प्रत्येक इकाई के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। जिससे आप इन पुस्तकों का अध्ययन कर सम्बन्धित विषय का और अधिक ज्ञान कर पायेंगे। हम यह आशा करते हैं कि यह पाठ्यक्रम आपके लिए रुचिकर व ज्ञान वर्धक होगा।

शुभकामनाओं के साथ

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की पाठ्यसामग्री निम्न प्रकार से प्रस्तुत की गई है—

प्रथम खण्ड – पातंजल योगसूत्र समाधिपाद

इकाई 1 योगदर्शन में पातंजल योगसूत्र का स्थान

इकाई 2 योग-अर्थ परिभाषा एवं वैशिष्ट्य

इकाई 3 समाधिपाद में प्रतिपादित योग वृत्तियाँ

इकाई 4 वृत्ति निरोध के उपाय

इकाई 5 समाधिपाद में वर्णित असम्प्रज्ञात एवं सम्प्रज्ञात समाधि का विवेचन

इकाई 6 समाधि प्राप्ति के उपाय

इकाई 7 ईश्वर की अवधारणा विषयक विवेचन

द्वितीय खण्ड – पातंजल योगसूत्र : साधनपाद

इकाई 8 साधनपाद में प्रतिपादित अष्टांग योग का परिचय

इकाई 9 यम–नियम के अर्थ व स्वरूप का विवेचन

इकाई 10 वितर्क निवारण के उपायों का विवेचन

इकाई 11 आसन का अर्थ व स्वरूप विवेचन

इकाई 12 प्राणायाम के विविध अर्थ

तृतीय खण्ड – पातंजल योगसूत्र : साधनपाद तथा विभूतिपाद

इकाई 13 प्रत्याहार का स्वरूप एवं इन्द्रिय वशीकरण विवेचन

इकाई 14 धारणा ध्यान एवं समाधि का अर्थ, स्वरूप व वैशिष्ट्य

इकाई 15 विभूतिपाद में प्रतिपादित धारणा, ध्यान विषयक अवधारणा का निरूपण

प्रिय शिक्षार्थियों,

बी.ए. (सामान्य) संस्कृत कार्यक्रम के पाठ्यक्रम BSKS-187 पातंजल योगसूत्र का आप अध्ययन करने जा रहे हैं। यह पाठ्यक्रम 4 क्रेडिट का है जो 15 इकाईयों में विभाजित है।

खण्ड	इकाई
प्रथम खण्ड – पातंजल योगसूत्र समाधिपाद	1, 2, 3, 4, 5, 7
द्वितीय खण्ड – पातंजल योगसूत्र : साधनपाद	8, 9, 10, 11, 12
तृतीय खण्ड – पातंजल योगसूत्र : साधनपाद तथा विभूतिपाद	13, 14, 15

खण्ड 1

पातञ्जल योगसूत्र समाधिपाद

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 योगदर्शन में पातंजल योगसूत्र का स्थान

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 योगदर्शन का प्रतिपाद्य विषय
 - 1.2.1 योगदर्शन
 - 1.2.2 समाधिपाद
 - 1.2.3 साधनपाद
 - 1.2.4 विभूतिपाद
 - 1.2.5 कैवल्यपाद
 - 1.2.6 योग शब्द का अर्थ
 - 1.2.7 योग के उपाय
 - 1.2.8 योग के भेद
 - 1.2.9 योग का फल
 - 1.2.10 योगदर्शन के चार विशिष्ट विषय
- 1.3 योग का महत्व
- 1.4 दर्शन शब्द का अर्थ
 - 1.4.1 योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में दर्शन शब्द का अर्थ
- 1.5 योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में साधन चतुष्टय
- 1.6 सूत्र शब्द का अर्थ
 - 1.6.1 सूत्र की परिभाषा
- 1.7 योगदर्शन में पातंजल योगसूत्र का स्थान
- 1.8 बोध एवं अभ्यास प्रश्न
- 1.9 सारांश
- 1.10 शब्दावली
- 1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 1.12 बोध अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- योग दर्शन के प्रतिपाद्य विषय के बारे में जान सकेंगे।
- महर्षि पतंजलि के बारे में जान सकेंगे।
- योग, दर्शन एवं सूत्र आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

योगदर्शन का आधार योगसूत्र हैं। इसके प्रणेता स्वयं पतंजलि हैं। योग के यथार्थ स्वरूप का वर्णन सूक्ष्मतया योगसूत्रों में है। उसको जनसामान्य के लिए समझ पाना सरल नहीं है। अतः इसके यथार्थस्वरूप के उद्घाटन के लिए योगसूत्रों पर व्यास ने भाष्य का निर्माण किया। तथा इस पर अनेकों वृत्तियाँ, टीकायें लिखीं जो सब दर्शन की श्रेणी में समाहित होती हैं। 'योगदर्शन में पातंजल योग सूत्र का स्थान इस इकाई के अन्तर्गत हम योगदर्शन के प्रतिपाद्य विषय को समझेंगे जिसमें आस्तिक नास्तिक दर्शन योगदर्शन का विभाजन क्रम, योग शब्द का अर्थ, योग के उपाय, योग के भेद, योग का फल, योग का महत्त्व, दर्शन, योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में दर्शन शब्द का अर्थ, योगदर्शन का साधन चतुष्टय, सूत्र शब्द का अर्थ, योगदर्शन और योगसूत्र में अन्तर आदि विषयों को समझने का प्रयास करेंगे।

1.2 योगदर्शन का प्रतिपाद्य विषय

सम्पूर्ण चराचर जगत का ज्ञान वेदों में विद्यमान है। भारत के ऋषियों ने उस सूक्ष्म ज्ञान को इनसे प्राप्त कर, इनको प्रमाण मानकर दर्शनों का निर्माण किया वे दर्शन न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त कहलाये। जिनके लेखक ऋषि क्रमशः— गौतम, कणाद, कपिल, पातंजलि, जैमिनी और बादरायण हैं। इन्होंने दर्शनों से संबंधित सूत्रों का निर्माण किया। जो तद्दर्शन दर्शनों के आधार बने। ये षड्दर्शन ईश्वर और वेद को प्रमाण मानते हैं। इसलिए ये आस्तिक कहलाये। इनके अतिरिक्त जो ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं वे चारवाक, जैन और बौद्ध। नास्तिक कहलाये थे। किन्तु यहां ध्यातव्य है कि जैन और बौद्ध दर्शन ईश्वर को नहीं मानते किन्तु आत्मा और पुनर्जन्म को स्वीकार करते हैं। अतः ये पूर्ण रूप से नास्तिक नहीं कहे जा सकते।

1.2.1 योगदर्शन

उक्त छह दर्शनों में योगदर्शन का विशिष्ट स्थान है इस दर्शन का आधार पातंजलि प्रणीत योग सूत्र हैं। सम्पूर्ण दर्शन पादों में विभाजित है। जिसमें चार पाद (अध्याय) हैं। जिनके क्रमशः नाम समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद हैं। इन पादों में सूत्र पढ़े गए हैं। समाधिपाद में 51 सूत्र हैं। साधन एवं विभूतिपाद में 55-55 सूत्र हैं। तथा कैवल्यपाद में 34 सूत्र हैं। इनका स्वरूपगत संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। इसमें योग का वास्तविक स्वरूप, योग का फल, योग के क्रियात्मक उपाय, योग के भेद तथा योग में उपस्थित होने वाली बाधाओं का वर्णन है।

1.2.2 समाधिपाद

समाधि शब्द का अर्थ चित्तवृत्तियों का निरोध है। इसमें प्रमुखतया समाधि तथा उसके भेदों का वर्णन किया गया है। अतएव इसका नाम 'समाधिपाद रखा गया है। इसमें योग साधकों के लिए समाधि के वर्णन के साथ-साथ योग के साधनों का भी वर्णन किया गया है। योग का स्वरूप तथा उसका फल, चित्तवृत्तियों के प्रकार एवं उनका स्वरूप वैराग्य के भेद तथा उनका स्वरूप, योग के भेद एवं प्रभेद, ईश्वर का स्वरूप, जप करने की विधि, मन के निरोध हेतु विविध उपायों का वर्णन है, सम्पत्ति का स्वरूप एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा के लक्षण आदि का वर्णन है।

1.2.3 साधनपाद

प्रथम पाद में समाधि का प्रमुखतया वर्णन किया गया है। समाधि लगाने के लिए क्या-क्या साधन होने चाहिए उन साधनों का वर्णन इस पाद में किया गया है। इसमें क्रियायोग एवं उसका फल विवेकी के लिए दुःख उनकी हेयता, दृश्य का स्वरूप, योगांग एवं उनका फल, प्राणायाम का लक्षण, उसके भेद और फल, प्रत्याहार का स्वरूप आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

1.2.4 विभूतिपाद

विभूति शब्द का अर्थ उपलब्धि, सिद्धि आदि है। जैसा कि की ऊपर हमने पढ़ा समाधि को लगाने के लिए साधनों की आवश्यकता होती है। उन साधनों के अनुष्ठान से अनेक प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है। उन सिद्धियों का प्रमुखतया इस पाद में वर्णन किया गया है। अतः इसका नाम विभूतिपाद रखा गया। इसमें धारणा, ध्यान, समाधि इन तीन योगांगों का लक्षण तथा उनका शास्त्रीय पारिभाषिक नाम, उनकी सिद्धि का फल, तथा विभिन्न स्तरों में विनियोग, मोक्ष प्राप्ति में सभी सिद्धियों की अनिवार्यता का निषेध, चित्त परिणामों के भेद और उनका विवरण, संयम के अनुष्ठान से विविध ऐश्वर्यों की प्राप्ति, विवेक ज्ञान का प्रादुर्भाव और उसका परिणाम आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

1.2.5 कैवल्यपाद

समाधि साधन एवं विभूति-(सिद्धि) से जिसकी प्राप्ति होती है वह है कैवल्य (मोक्ष)। इसमें कैवल्य (मोक्ष) के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया गया है। अतः इसका नाम कैवल्यपाद है। इसमें चित्त सिद्धियों के पांच भेद कर्मों के प्रकार, कर्माशय के रहते मोक्ष सिद्धि का संभव न होना योगी एवं अयोगी के कर्मों में अन्तर स्मृति और संस्कार समान विषयक होते हैं, वासना, संग्रह के कारणों, संसार चक्र छह अरों वाला है, क्षणिकवाद आदि का खण्डन धर्म में समाधि का स्वरूप, क्रम का स्वरूप आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

1.2.6 योग शब्द का अर्थ

योग शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने से बना है। धातुपाद में तीन जगह युज धातु का पाठ है 'युज समाधौ' दिवादिगण, 'युजिर योगे' रुधारिगण तथा 'युज संयमने' चुरादिगण। योगदर्शन के सन्दर्भ में युज समाधौ से निष्पन्न योग शब्द लिया जात है क्योंकि यहां पर योग का अर्थ समाधि अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध है। यद्यपि योग शब्द युजिर योगे एवं युज संयमने से भी सिद्ध होता है जिसका अर्थ क्रमशः जोड़ एवं नियमन है किन्तु योगदर्शन की परिप्रेक्ष्य में इन अर्थों की संगति नहीं बैठती है। अतः 'युज समाधौ' धातु से निष्पन्न योग शब्द ही ग्रहण करना चाहिए।

योग दर्शन के अनुसार मन के समस्त अनावश्यक विचारों चिन्ता क्रोध तनाव खिन्नता चंचलता घृणा अभिमान आदि को रोककर मन को अभीष्ट ध्येय आत्मा तथा प्रकृति के पदार्थों में नियुक्त कर उसके यथार्थ स्वरूप को जानना तथा मन की सात्विक वृत्ति का भी निरोध कर ईश्वर का साक्षात्कार करना योग है।

1.2.7 योग के उपाय

यमनियमासनादि 8 योगाङ्ग, विवेकख्याति, वैराग्य, अभ्यास और उच्च स्तरीय ईश्वर प्रणिधान ये योगसाधना के उपाय हैं।

1.2.8 योग के भेद

योग के दो भेद हैं 1—सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधिके चार भेद हैं—वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता। असम्प्रज्ञान समाधि के दो भेद हैं— भवः प्रत्यय और उपाय प्रत्यय।

1.2.9 योग का फल

योगी का समस्त क्लेशों से छुटकारा। योगी को अपने एवं ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान, मेधाबुद्धि की प्राप्ति, तीव्र स्मृति की प्राप्ति, एकग्रता की प्राप्ति, मन आदि इन्द्रियों पर नियन्त्रण।

1.2.10 योगदर्शन के चार विशिष्ट विषय

1. हेय— दुःख का वास्तविक स्वरूप क्या है? जो हेय—त्याज्य
2. हेय हेतु— त्याज्य दुःख का वास्तविक कारण क्या है।
3. हान—दुःख का अत्यन्त अभाव क्या है। हान—मोक्ष
4. हानोपाय— हान—दुःख निवृत्ति का उपाय क्या है। हानोपाय मोक्ष प्राप्ति का उपाय

योगदर्शन में त्रेतवाद ईश्वर जीव एवं प्रकृति का विवेचन किया गया है कर्मसिद्धान्त योग दर्शन में तीन प्रकार के कर्म — क्रियमाण कर्म, संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म।

1.3 योग का महत्व

जो साधक आत्म—साक्षात्कार के जिज्ञासु हैं उनके लिये महर्षि पतंजलि प्रणीत योगदर्शन पथ—प्रदर्शक और महान् उपकारक है। जो शरीर, इन्द्रिय, मन और अहंकार के बन्धनों से रहित विशुद्ध आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करना चाहते हैं, उनके लिये योग एक महान् साधन है। योग के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है। मोक्ष की प्राप्ति के लिये ज्ञान ही पर्याप्त नहीं माना गया है, किन्तु योग के अभ्यास पर भी बल दिया गया है। योग के अभ्यास पर जोर देना इस दर्शन की अपनी विशेषता है। इस प्रकार योग दर्शन में व्यावहारिक पक्ष अधिक प्रधान है। जब तक मनुष्य का चित्त निर्मल और अचञ्चल नहीं हो जाता तब तक उसे दर्शन के परम तत्त्व का साक्षात्कार नहीं हो सकता। शुद्ध हृदय और शान्त मन ही परम सत्य को प्रदर्शित करने का परम अधिकारी है। आत्म शुद्धि के लिये योग ही सर्वोत्कृष्ट साधन है। इससे शरीर और चित्त दोनों का ही संस्कार हो जाता है। इसीलिये चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीय दर्शन अपने—अपने सिद्धांतों को, योग के मार्ग से, धारणा, ध्यान और समाधि आदि के द्वारा स्पष्ट अनुभव, करने का प्रयास करते हैं।

1.4 दर्शन शब्द का अर्थ

दर्शन शब्द का शाब्दिक अर्थ है यथार्थज्ञान दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम् जिसके द्वारा यथार्थज्ञान होता है वह दर्शन कहलाता है।

1.4.1 योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में दर्शन शब्द का अर्थ

योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति ऐसे की जा सकती है— दृश्यन्ते ज्ञायन्ते याथातथ्यतः आत्मपरमात्मनो बुद्धीन्द्रियादयोऽतीन्द्रियाः सूक्ष्मविषया येन तद्दर्शनम्।

अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा परमात्मा पांच कर्मेन्द्रिया— पाणि—पाद= हाथ और पैर, बुद्धि एवं अहंकार नामक यन्त्र एवं मन, पांच ज्ञानेन्द्रियां— कान, आंख, नाक, जीह्वा, त्वचा। पांचमहाभूत— आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। पांच तन्मात्राये— शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। सत्व, रज एवं तम इन 28 तत्त्वों को जाना जाता है।

1.5 योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में साधन चतुष्टय

अधिकारी— योगविद्या पढ़ने का अधिकारी कौन है ? योग सीखने का जिज्ञासु विद्यार्थी
विषय— इसका विषय योग है

सम्बन्ध— इसमें प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव सम्बन्ध है प्रतिपाद्य—योग, प्रतिपादक—पातंजलि का योगसूत्र और व्यासभाष्य आदि।

प्रयोजन— इस दर्शन को पढ़ने का फल क्या है ? इसके पढ़ने से समस्त दुःखों का नाश एवं पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है।

1.6 सूत्र शब्द का अर्थ

सूत्र शब्द का शाब्दिक अर्थ है धागा, धागे में अनेक तन्तु विद्यमान होते हैं। जिस प्रकार धागा बहुत बड़े रूई के ढेर का संक्षेप रूप होता है वैसे ही सूत्र भी बहुत बड़े एवं व्यापक विषय का संक्षेप रूप होते हैं।

जिस प्रकार हमने देखा योग के बहुत बड़े एवं व्यापक विषय को 195 सूत्रों में कह दिया है जिसे कई वर्षों में आत्मसात् किया जाता है।

1.6.1 सूत्र की परिभाषा

संस्कृत शास्त्रों में इस प्रकार —

अल्पाक्षरं सन्दिग्धं सारवत् विश्वतोमुखम्।

अस्तोभवं मनवद्यं च सूत्रं सूत्र विदो विदुः।

अर्थात् जिसमें अल्पाक्षर हों, सन्देह रहित, सार युक्त हों, सम्पूर्ण विषय के स्वरूप को उद्घाटित करने वाले हों, दोषों का अभाव हों, निन्दनीय न हों उसे सूत्र कहते हैं।

1.7 योगदर्शन में पातंजल योगसूत्र का स्थान

भारतीय दर्शनों में योग के यथार्थस्वरूप का सूक्ष्मतया योगसूत्रों में वर्णन है। ये योगसूत्र योगदर्शन के आधार हैं। योगसूत्रों के सूक्ष्म विषय के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान जिन-जिन माध्यमों से भाष्यों वृत्तियों और टीकाओं से हाता है वह सब योग दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। योग सूत्र के सूक्ष्म विषय को उद्घाटित करने वाला महर्षि वेद व्यास ने भाष्य लिखा जो 'व्यासभाष्य' के रूप में जाना जाता है। व्यास भाष्य के भाष्य पर षड्दर्शन किशरी वाचस्पति मिश्र ने तत्व वैशारदी टीका लिखी। जो योग के विषय को और स्पष्ट करती है। योगसूत्रों के विषय को स्पष्ट करने के लिए योग मर्मज्ञ आचार्य

भोजराज ने एक वृत्त लिखी जिसे भोजवृत्ति के नाम से जाना जाता है। योग भाष्य के अर्थ को समझने के लिए विज्ञान भिक्षु ने योगवार्तिक की रचना की है। यह केवल व्यास भाष्य का ही विवेचन नहीं करता अपितु तत्त्व वैशारदी विषयों की भी समालोचना करता है। यही कारण है कि उनके बहुत से मत वाचस्पति मिश्र से भिन्न पड़ते हैं। भिक्षु ने योगसारसंग्रह नामक लघुकाय ग्रन्थ में योग के सिद्धांतों का सारांश उपस्थित किया है। आधुनिक प्रसिद्ध सांख्य योगाचार्य हरिहरानन्द आरण्यक ने भाष्य पर भास्वती नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त योगसूत्र की अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें भावागणेश की वृत्ति रामानन्द यति की मणिप्रभा या योगमणिप्रभा अनन्त पण्डित की योगचन्द्रिका, सदाशिवेन्द्र सरस्वती का योगसुधाकर तथा नागोजी भट्ट की लघ्वी और बृहती वृत्तियाँ नितान्त प्रसिद्ध हैं। मणिप्रभा तथा योगसुधाकर योगनिष्ठ पुरुषों के द्वारा लिखी गई है। अतः सूत्रों के मर्म को उद्घाटित करने में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

यहां यह ध्यातव्य है कि योगदर्शन योगसूत्रों पर लिखे जाने वाले भाष्य वृत्ति और टीका रूप समुदाय का बोधक है न कि ग्रन्थ विशेष का यह कहना भी आंशिक रूप से ही ठीक है कि योगदर्शन के लेखक पतञ्जलि हैं वह तो योगसूत्रों के लेखक हैं चूंकि योगदर्शन का आधार योगसूत्र हैं इसलिए लोक में यह फैल गया कि योगदर्शन के लेखक पतञ्जलि हैं।

योगदर्शन तो ऋषियों के अनुभूत योग के तत्त्वों को जानने का साधन है। एक प्रसिद्ध श्लोक में पतञ्जलि को योगसूत्र के निर्माता व्याकरण महाभाष्य के प्रणेता तथा चरक संहिता के रचयिता के रूप में स्वीकार किया गया है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलि प्राञ्जलिरानतोऽस्मि

अर्थात् में उन मुनियों में श्रेष्ठ पतञ्जलि को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ जिसने योग से अन्तःकरण के, व्याकरण से वाणी के, और वैद्यक से शरीर के, मल को दूर किया है।

इनके विषय में कहा जाता है कि ये शेषनाग के अवतार थे। शेषनाग के रूप को धारण करते हुए इन्होंने महाभाष्य की रचना की और शिष्यों को पढ़ाया था।

1.8 बोध एवं अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइयें।

- पातञ्जल योगदर्शन में कितने पाद हैं। (04/03)
- योग दर्शन के प्रणेता कौन हैं। (कपिल/पतञ्जलि)
- प्रथम पाद का नाम क्या है। (समाधिपाद/साधनपाद)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- मोक्ष का वर्णनपाद में किया गया है। (चतुर्थपाद/तृतीयपाद)
- ज्ञानेन्द्रियां..... कितनी हैं (05/07)
- सूत्र..... किसे कहते हैं (संक्षेप/विस्तार)

बोध प्रश्न-2

1. योग दर्शन के प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. योग के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. योग दर्शन में पातंजल योगसूत्र के स्थान को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

पातंजल योगसूत्र पर निबन्ध लिखिए?

1.9 सारांश

‘योगदर्शन में पातंजल योग सूत्र का स्थान इस इकाई के अन्तर्गत हमने योगदर्शन के प्रतिपाद्य विषय को समझा। जिसमें आस्तिक एवं नास्तिक दर्शन, योगदर्शन का विभाजन क्रम, योग शब्द का अर्थ, योग के उपाय, योग के भेद, योग का फल, योग का महत्त्व, दर्शन शब्द का अर्थ, योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में दर्शन शब्द का अर्थ, योगदर्शन का साधन चतुष्टय, सूत्र शब्द का अर्थ, ‘योगदर्शन में पातंजल योग सूत्र का स्थान आदि विषयों को समझने का प्रयास किया।

1.10 शब्दावली

सूत्र	—	सूक्ष्म
आस्तिक	—	ईश्वर, वेद एवं पुनर्जन्म को मानने वाला
नास्तिक	—	ईश्वर, वेद एवं पुनर्जन्म को न मानने वाला
विभूति	—	उपलब्धि, सिद्धि

दर्शन	—	यथार्थ ज्ञान
समाधि	—	चित्तवृत्तियों का निरोध

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- योगदर्शनम्, व्याख्याकार, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, दर्शन, योग धर्मार्थ ट्रस्ट, गुजरात
- पातञ्जल योगदर्शन भाष्य, भाष्यकार राजबीर शास्त्री आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट।

1.12 बोध अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. (i) 04 (ii) पतञ्जलि (iii) समाधिपाद
2. (i) चतुर्थपाद (ii) 26 (iii) ईश्वर

बोध प्रश्न-2

योग दर्शन में पातञ्जल योगसूत्र के स्थान को स्पष्ट कीजिए।

भारतीय दर्शनों में योग के यथार्थस्वरूप का सूक्ष्मतया योगसूत्रों में वर्णन है। ये योगसूत्र योगदर्शन के आधार हैं। योगसूत्रों के सूक्ष्म विषय के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान जिन-जिन माध्यमों से भाष्यों वृत्तियों और टीकाओं से हाता है वह सब योग दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। योग सूत्र के सूक्ष्म विषय को उद्घाटित करने वाला महर्षि वेद व्यास ने भाष्य लिखा जो 'व्यासभाष्य' के रूप में जाना जाता है। व्यास भाष्य के भाष्य पर षड्दर्शन किशरी वाचस्पति मिश्र ने तत्त्व वैशारदी टीका लिखी। जो योग के विषय को और स्पष्ट करती है। योगसूत्रों के विषय को स्पष्ट करने के लिए योग मर्मज्ञ आचार्य भोजराज ने एक वृत्त लिखी जिसे भोजवृत्ति के नाम से जाना जाता है। योग भाष्य के अर्थ को समझने के लिए विज्ञान भिक्षु ने योगवार्तिक की रचना की है। यह केवल व्यास भाष्य का ही विवेचन नहीं करता अपितु तत्त्व वैशारदी विषयों की भी समालोचना करता है। यही कारण है कि उनके बहुत से मत वाचस्पति मिश्र से भिन्न पड़ते हैं। भिक्षु ने योगसारसंग्रह नामक लघुकाय ग्रन्थ में योग के सिद्धांतों का सारांश उपस्थित किया है। आधुनिक प्रसिद्ध सांख्य योगाचार्य हरिहरानन्द आरण्यक ने भाष्य पर भास्वती नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त योगसूत्र की अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें भावागणेश की वृत्ति रामानन्द यति की मणिप्रभा या योगमणिप्रभा अनन्त पण्डित की योगचन्द्रिका, सदाशिवेन्द्र सरस्वती का योगसुधाकर तथा नागोजी भट्ट की लघ्वी और बृहती वृत्तियाँ नितान्त प्रसिद्ध हैं। मणिप्रभा तथा योगसुधाकर योगनिष्ठ पुरुषों के द्वारा लिखी गई है। अतः सूत्रों के मर्म को उद्घाटित करने में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

यहां यह ध्यातव्य है कि योगदर्शन योगसूत्रों पर लिखे जाने वाले भाष्य वृत्ति और टीका रूप समुदाय का बोधक है न कि ग्रन्थ विशेष का यह कहना भी आंशिक रूप से ही ठीक है कि योगदर्शन के लेखक पतञ्जलि हैं वह तो योगसूत्रों के लेखक हैं चूंकि योगदर्शन का आधार योगसूत्र हैं इसलिए लोक में यह फैल गया कि योगदर्शन के लेखक पतञ्जलि हैं।

योगदर्शन तो ऋषियों के अनुभूत योग के तत्त्वों को जानने का साधन है। एक प्रसिद्ध श्लोक में पतञ्जलि को योगसूत्र के निर्माता व्याकरण महाभाष्य के प्रणेता तथा चरक

संहिता के रचयिता के रूप में स्वीकार किया गया हैं।

योगदर्शन में पातंजल
योगसूत्र का स्थान

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलि प्रांजलिरानतोऽस्मि

अर्थात् में उन मुनियों में श्रेष्ठ पतञ्जलि को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ जिसने योग से अन्तःकरण के, व्याकरण से वाणी के, और वैद्यक से शरीर के, मल को दूर किया है।

इनके विषय में कहा जाता है कि ये शेषनाग के अवतार थे। शेषनाग के रूप को धारण करते हुए इन्होंने महाभाष्य की रचना की और शिष्यों को पढ़ाया था।

अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 योग, अर्थ, परिभाषा एवं वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 योग का अर्थ
- 2.3 योग की परिभाषा
- 2.4 योग का वैशिष्ट्य
- 2.5 सारांश
- 2.6 शब्दावली
- 2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 2.8 बोध प्रश्न/उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- योग के अर्थ के बारे में जान सकेंगे।
- योग की परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
- योग के वैशिष्ट्य के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

योग 5000 वर्ष पुराना भारतीय दर्शन शास्त्र है। यह सबसे पहला प्राचीन पवित्र पाठ ऋग्वेद में प्राप्त होता है क्योंकि वेद आध्यात्मिक ज्ञान, गीत और ब्राह्मणों द्वारा उपयोग किए जाने वाले अनुष्ठान, वैदिक पुजारियों के ग्रन्थों का एक संग्रह है। हजारों वर्ष पूर्व प्राचीनकाल से भारतीय समाज में योग का अभ्यास किया जा रहा है। योग करने वाला व्यक्ति अलग-अलग क्रियाएँ करता है जिसे आसन कहते हैं। योग उन लोगों को लाभ देता है जो नियमित रूप से अभ्यास करते हैं। इस प्रकार **इकाई-02 योग, अर्थ, परिभाषा एवं वैशिष्ट्य** के अन्तर्गत योग का अर्थ, परिभाषा एवं उसके वैशिष्ट्य विषय का वर्णन किया जायेगा।

2.2 योग का अर्थ

योग शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। अतः 'योग' शब्द का अर्थ 'समाधि' अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध है। यद्यपि योग शब्द 'युजिर योगे' तथा 'युज संयमने' धातुओं से भी निष्पन्न होता है परन्तु जब योग शब्द का अर्थ क्रमशः 'योगफल' अर्थात् जोड़ तथा 'नियमन' होगा जो कि योगदर्शन के '**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**' सूत्र में प्रतिपादित योग की परिभाषा के अनुकूल न होने से अभीष्ट नहीं है। अतः 'युज समाधौ' धातु से निष्पन्न 'योग' शब्द ही यहाँ स्वीकार्य है। इस प्रकार मन के समस्त अनावश्यक विचारों चिन्ता, क्रोध, तनाव,

खिन्नता, चंचलता, घृणा, अभिमान आदि को रोककर मन को अभीष्ट ध्येय आत्मा तथा प्राकृतिक पदार्थों में नियुक्त कर उनके यथार्थ स्वरूप को जानना तथा मन की सात्त्विक वृत्ति का भी निरोध कर ईश्वर का साक्षात्कार करना योग है।

2.3 योग की परिभाषा

योग की परिभाषा करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है कि—‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’ अर्थात् चित्त की वृत्तियों का रुक जाना ही योग है। इसी को समाधि कहा गया है। इस सूत्र में ‘सर्व’ शब्द का ग्रहण न होने से ‘सम्प्रज्ञात समाधि’ भी योग कही जाती है। चित्त तीन प्रकार के स्वभाव वाला अर्थात् प्रकाशशील, गतिशील और स्थैर्यशील है, यह त्रिगुणात्मक है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण चित्त के उपादान कारण हैं। इसीलिए उसका स्वभाव तीन प्रकार का है। चित्त के निर्माण में सत्त्वगुण की प्रधानता है। परन्तु उसमें रजोगुण, तमोगुण भी मिश्रित रहते हैं। जिस समय चित्त में रजोगुण और तमोगुण का उभार होता है उस समय मनुष्य विविध ऐश्वर्यों का इच्छुक होता है। यह चित्त की ‘क्षिप्तावस्था’ है और जब तमोगुण का उभार अधिक मात्रा में होता है तब व्यक्ति को अधर्म, अज्ञान आदि अधिक प्रिय लगते हैं, यह चित्त की ‘मूढावस्था’ है। किन्तु जब तमोगुण दब जाता है और रजोगुण का कुछ उभार होता है तब व्यक्ति की धर्म, ज्ञान वैराग्य में अधिक रुचि होती है यह चित्त की ‘विक्षिप्तावस्था’ है और जब सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है और रजोगुण, तमोगुण दब जाते हैं तो साधक धर्ममेघ समाधि में पहुँच जाता है। इस अवस्था को योगी लोग ‘परं प्रसंख्यान’ के नाम से कहते हैं। इस समाधि में पदार्थ का स्वरूप अच्छे प्रकार से परिज्ञात होता है। यह चित्त की ‘एकाग्रावस्था’ है। यही एकाग्रावस्था समाधि है। ये विविध परिवर्तन चित्त में होते हैं, जीवात्मा में नहीं, क्योंकि चित्त परिवर्तनशील है, वह उत्पन्न होता है, और नष्ट भी होता है। जीवात्मा अपरिवर्तनशील है, न उत्पन्न होता है, और न नष्ट होता है। धर्ममेघ समाधि के समय बुद्धि का और जीवात्मा का पृथक्-पृथक् स्वरूप ज्ञात रहता है। इस ज्ञान का नाम विवेकख्याति है। यह सत्त्वगुणात्मक है। जीवात्मा इससे भिन्न है। जब धर्ममेघ समाधि को प्राप्त योगी विवेकख्याति में भी दोष देखता है तो उससे भी वैराग्य हो जाता है। यह पर वैराग्य है। यह असम्प्रज्ञात समाधि का साधन है। परवैराग्य से चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है और असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाती है। असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि भी कहते हैं। यह चित्त की ‘निरुद्धावस्था’ है।

यह चित्त वृत्ति निरोध दो प्रकार का है एक सम्प्रज्ञात और दूसरा असम्प्रज्ञात। चित्तवृत्ति निरोध अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाने पर योगी की क्या स्थिति होती है। इसको सूत्रकार ने सूत्र में कहा है कि—‘तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्’ अर्थात् तब असम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप में अवस्थिति होती है अर्थात् जीवात्मा अपने और ईश्वर के स्वरूप को ठीक-ठीक जानता है। कहने का आशय है कि जब साधक असम्प्रज्ञात स्थिति को प्राप्त कर लेता है तब वह अपने स्वरूप को ठीक-ठीक जान लेता है। यद्यपि सम्प्रज्ञात समाधि में भी जीवात्मा अपने स्वरूप को जान लेता है परन्तु असम्प्रज्ञात समाधि में सम्प्रज्ञात समाधि की अपेक्षा जीवात्मा को अपने स्वरूप का अधिक स्पष्ट ज्ञान होता है। अर्थात् मैं सत्त्व, रजस्, तमस् रूप प्रकृति और उससे बने शरीर, इन्द्रिय आदि कार्यों से पृथक् हूँ, ऐसा जान लेता है। उस समय वह प्रकृति अथवा प्राकृतिक पदार्थों की उपासना को छोड़कर ईश्वर के स्वरूप में मग्न हो जाता है। इसी शरीर में रहता हुआ समस्त क्लेशों से छूट जाता है और मोक्षानन्द का अनुभव उसी प्रकार करता है जिस प्रकार मुक्तात्मा मोक्ष में अनुभव करते हैं। इस

सूत्रभाष्य में महर्षि व्यास जी ने लिखा है कि 'स्वरूपप्रतिष्ठा तदानीं चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये' अर्थात् मोक्षावस्था में जीवात्मा जिस प्रकार अपने शुद्ध स्वरूप को जानता हुआ परमात्मा के आनन्द का अनुभव करता है उसी प्रकार योगी इस शरीर में अपने विशुद्धस्वरूप को जानता हुआ ईश्वर में मग्न होकर उससे आनन्द का अनुभव करता है। इसके अनुसार जीवात्मा की अपने स्वरूप में तथा ईश्वर के स्वरूप में स्थिति होती है। अर्थात् इस स्थिति में जीवात्मा की अपने स्वरूप में तथा ईश्वर के स्वरूप में स्थिति होती है अर्थात् इस स्थिति में जीवात्मा अपने तथा ईश्वर के स्वरूप को यथावत् जानता है। यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि सूत्र का मुख्यार्थ जीवात्मा का परमेश्वर के स्वरूप में स्थित होना है न कि केवल अपने स्वरूप में स्थित होना। क्योंकि केवल अपने स्वरूप में स्थित होने से जीव के समस्त क्लेशों की निवृत्ति एवं नित्यानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। वेद में भी इस बात का उल्लेख है—'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' अर्थात् उस परम पुरुष ईश्वर को ही जानकर जीवात्मा मृत्यु आदि दुःखों से छूट जाता है। मुक्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं हैं—

“अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।।”

(अथर्ववेद 10/8/44)

2.4 योग का वैशिष्ट्य

योग दर्शन में चार विषयों का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। वे विषय क्रमशः हेय, हेयहेतु, हान तथा हानोपाय हैं।

1. **हेय**—इसके स्वरूप को महर्षि पतंजलि जी ने योगदर्शन द्वितीय पाद के सोलहवें सूत्र 'हेयं दुःखमनागतम्' में स्पष्ट किया है। इस सूत्र के अनुसार भविष्य में आने वाले दुःख को ही हेय अर्थात् त्याज्य कहा गया है अर्थात् जो दुःख अभी प्राप्त नहीं हुआ है उसे ही दूर किया जा सकता है, उससे ही बचा जा सकता है। उसे इस प्रकार से भी समझ सकते हैं कि जो दुःख भूतकाल में भोग लिया है, वह छोड़ने योग्य नहीं है क्योंकि वह अब भोक्ता के समीप नहीं है। और जो दुःख वर्तमान क्षण में भोगा जा रहा है, वह आगामी क्षण में नहीं रहेगा, उसका भी त्याग नहीं हो सकता है। अतएव जो भविष्यकालिक दुःख है, वही छोड़ने योग्य अर्थात् त्याज्य है। इस दर्शन में इसी का पारिभाषिक नाम 'हेय' है। कहने का आशय यह है कि जो दुःख भूतकाल में भोग लिया है वह छोड़ने योग्य नहीं है क्योंकि वह अब भोक्ता के समीप नहीं है। और जो दुःख वर्तमान क्षण में भोगा जा रहा है, वह आगामी क्षण में समाप्त हो जायेगा, उसका भी त्याग नहीं हो सकता, इसलिये जो भविष्यत् काल में आने वाला दुःख है, वही छोड़ने योग्य है। बाधा, पीड़ा, अशान्ति, बन्धन, पराधीनता का नाम दुःख है। अथवा जिससे पीड़ित होकर प्राणी उसका नाश करने का प्रयत्न करते हैं, वह दुःख है। इसलिये दुःख एक वस्तु है, अभाव का नाम दुःख नहीं है। यदि अभाव का नाम दुःख होता तो उसके त्याग का विधान करना व्यर्थ हो जाता। इसलिये दुःख का गुण है तब दुःख की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति अनागत दुःख को और दुःख के कारण को जान जाता है, वही दुःख से छूट सकता है।

दुःख के अनेक कारण हैं—अविद्या, अन्याय, अशुभ उपासना, कुसंस्कार, कुंसग, आलस्यादि। जो व्यक्ति यह जानता है कि अविद्या दुःख का कारण है। वह अपनी

अविद्या का नाश करने का पूर्ण प्रयास करता है। क्योंकि कारण के होने से कार्य की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक दुःख के कारण को अच्छे प्रकार जानकर उसको दूर करने का प्रयास करना चाहिये। बुद्धिमान व्यक्ति यह विचार करता है कि मनुष्य और पशु, पक्षी आदि के शरीर में अन्तर क्या है? परीक्षा करने से परिज्ञात होता है कि मनुष्य शरीर में जो सुख सुविधाएँ हैं वे पशु, पक्षी आदि के शरीर में नहीं हैं। इसलिये मनुष्य शरीर सुखप्रद और पशु आदि का शरीर दुःखप्रद है।

मनुष्य शरीर की प्राप्ति किस कारण से होती है, इस विषय में विचार करने से यह ज्ञात होता है कि धर्माचरण से होती है। मनुष्य को ऐसा विचारना चाहिए यदि मैं धर्माचरण करूँगा तो मनुष्य योनि मिलेगी तो बहुत दुःख भोगना पड़ेगा ऐसा विचारकर अधर्माचरण को छोड़ देने से दुःख का निवारण हो सकता है। मनुष्य शरीर मिलने पर क्या सुख ही मिलता है अथवा दुःख भी? इसका परीक्षण करने से ज्ञात होता है कि मनुष्य शरीर मिलने पर जो सुख मिलता है वह क्षणिक और दुःख मिश्रित होता है। इसलिये मनुष्य शरीर मिलने पर भी अनागत दुःख से मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिये अनागत दुःख से नितान्त छूटने का उपाय जानना चाहिये। अनागत दुःख को दूर करने वाला व्यक्ति अत्यन्त सावधान रहता है। वह चार बातों को जानने का प्रयास करता है कि दुःख क्या है? दुःख का कारण क्या है? सुख क्या है? और सुख का कारण क्या है? इन चार विषयों के परिज्ञान से और उसके लिये आवश्यक कर्तव्य से अनागत दुःख दूर किया जा सकता है। प्रत्येक प्राणी जो भी मन, वाणी और शरीर से क्रिया करता है उस क्रिया के करने से पूर्व परीक्षा करनी चाहिये कि इस क्रिया का परिणाम क्या होगा? यदि सुख परिणाम दिखाई देता है तो उसको करना चाहिये और दुःख परिणाम सिद्ध होता है तो तत्काल छोड़ देना चाहिये। प्रायः व्यक्ति क्रिया के परिणामों को बिना जाने क्रिया करता है और उसके दुःखद परिणाम होने पर पश्चात्ताप करता है। इसका कारण—‘हेयं दुःखमनागतम्’ को न जानना ही है।

दैनिक जीवन में ऐसी मानसिक क्रियाएँ बहुत होती हैं जिनका फल दुःख होता है। यदि मनुष्य उन मानसिक क्रियाओं से होने वाले अनागत दुःखों को जान लेता तो उनको बन्द कर देता है। आलस्य और प्रमाद अनागत दुःख को दूर करने में बाधक होते हैं। यदि व्यक्ति आलस्य और प्रमाद को दूर कर देता है तो भविष्य में होने वाली अनेक हानियों से बच जाता है। आलसी व्यक्ति न शारीरिक परिश्रम करता है, न विद्या पढ़ता है, न सत्पुरुषों का संग करता है। इसलिये भविष्यकाल में उसको विविध दुःख भोगने पड़ते हैं। वेद में अनागत दुःख को दूर करने के लिये मनुष्य को चेतावनी दी है कि—

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।

गोभाजऽऽत् किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥

(यजुर्वेद 12/79, 35/4)

2. **हेयहेतु**—इसके स्वरूप को द्वितीय पाद के सत्रहवें सूत्र—‘द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः’ में स्पष्ट किया गया है। हेयहेतु का अर्थ है दुःख का कारण। जीवात्मा का बुद्धि एवं समस्त प्राकृतिक पदार्थों के साथ जो अज्ञानपूर्वक सम्बन्ध है वह हेयहेतु कहलाता है। इसके अतिरिक्त अविद्या, अधर्म, कुसंस्कार आदि भी दुःख के कारण हैं। कहने का आशय यह है कि बुद्धि में जो सांसारिक पदार्थों के चित्र

उतरते हैं, उनका अनुभव करने वाला जीवात्मा है। जिन पदार्थों का बुद्धि में चित्र उतरता है उनको 'दृश्य' कहते हैं। प्रकृति को भी दृश्य कहते हैं क्योंकि इसी से बुद्धि, अहंकार आदि समस्त दृश्य जगत् उत्पन्न होता है और इस दृश्य से अज्ञान के कारण जीवात्मा का संयोग होता है। उसी संयोग से दुःख की उत्पत्ति होती है।

दृश्य अयस्कान्तमणि के तुल्य है। अयस्कान्तमणि (चुंबक) समीपता के कारण लोहे को अपनी ओर खींच लेती है। वैसे ही यह दृश्य जीवात्मा का समीपता के कारण उपकार करता है। यदि जीवात्मा दृश्य के साथ स्वस्वामिसम्बन्ध बना लेता है तो दृश्य इसके बन्धन का कारण बन जाता है। बुद्धि जीवात्मा के अनुभव का विषय बनती है अर्थात् जीवात्मा अनुभव करने वाला कर्ता और बुद्धि अनुभव क्रिया का कर्म बनती है। चेतन पुरुष के सानिध्य से बुद्धि चेतन सदृश स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। वास्तव में बुद्धि जड़ पदार्थ है। बुद्धि का उपादान कारण प्रकृति है और वह एक स्वतंत्र पदार्थ है। परन्तु जीवात्मा के भोग और अपवर्ग को सिद्ध करने वाली होने से परतंत्र है। जीवात्मा दृक्शक्ति और बुद्धि दर्शनशक्ति इन दोनों का प्रयोजनकृत एवं प्रवाह से अनादि संयोग बन्धन का कारण है।

यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अज्ञान के कारण आत्मा और दृश्य का संयोग होता है यह संयोग ही बन्धन का कारण है। ज्ञानपूर्वक संयोग बन्धन का कारण नहीं है। यदि सम्बन्धमात्र से बन्धन का कारण माना जाये तो ईश्वर का भी बन्धन होना चाहिये क्योंकि दृश्य का सम्बन्ध ईश्वर से भी है। संयोग के हेतु को दूर कर देने से दुःख की निवृत्ति हो जाती है। क्योंकि 'कारणाभावात् कार्याभावः।' (वै. द. 1/2/1) कारण के अभाव होने से कार्य का अभाव हो जाता है। जो व्यक्ति यह जानता है कि काँटे के द्वारा पैर के तल भाग में आघात होने से दुःख होता है तो वह उस काँटे पर पैर नहीं रखता। यदि रखता है तो पादत्राण (जूते) धारण करके रखता है। इससे उसको काँटे से उत्पन्न होने वाला दुःख सन्तप्त नहीं करता। जो भेद्यता, भेदकत्व और उसके परिहार के साधन को जानता है, वह दुःख को प्राप्त नहीं होता। यहाँ पर सत्त्वगुण भेद्य है। रजोगुण भेदक है और तत्त्वज्ञान परिहार का साधन है। यहाँ रजोगुण तपाने वाला है अर्थात् दुःख देने वाला है। सत्त्वगुण तपने वाला अर्थात् तपनक्रिया वाला है। क्योंकि तपनक्रिया कर्मस्थ है। अपरिणामी जीवात्मा में नहीं होती।

सत्त्वगुण के तपने पर बुद्धि के माध्यम से विषयों का अनुभव करने वाला जीवात्मा अज्ञानता के कारण उस तपनक्रिया को अन्दर मान लेता है। वास्तव में दुःखगुण रजस् द्रव्य का है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीन सूक्ष्म द्रव्यों से समस्त संसार की उत्पत्ति होती है। संसार में जो सुख है वह सत्त्वगुण का धर्म है। दुःख रजोगुण का और मोह तमोगुण का। अज्ञानता के कारण जीवात्मा, दुःख और मोह को अपना गुण मान लेता है। जब ज्ञानपूर्वक दृश्य का प्रयोग करता है तो जीवात्मा समस्त बन्धनों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

योगदर्शनकार ने यह कहा है कि यह दृश्य भोग और अपवर्ग की प्राप्ति के लिये है। जो लोग अज्ञान युक्त हैं, वे भोगों में ही सन्तोष कर लेते हैं और जो तत्त्ववेत्ता हैं वे भोगों में दुःख देखकर उनका परित्याग कर देते हैं और मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इसलिये प्रत्येक योगाभ्यासी को यह जानना चाहिये कि अज्ञानपूर्वक प्रयोग करने से संसार के पदार्थ बन्धन का कारण बनते हैं और ज्ञानपूर्वक प्रयोग करने से मोक्ष का कारण बनते हैं। वेद में भी यह बात कही है कि जो व्यक्ति कारण

‘सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।’

(यजुर्वेद, 40/11)

3. **हान—**इसका वर्णन योगदर्शन सूत्र 2/25 ‘तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्’ में किया गया है। अविद्या का अभाव हो जाने पर बुद्धि और जीवात्मा के अज्ञानजनित संयोग का अभाव हो जाता है। उससे जीवात्मा के बन्धन का नितान्त विनाश हो जाता है तथा उसे प्राप्त करने योग्य दुःखरहित नित्य सुख और ईश्वर की प्राप्ति होती है। यही ‘हान’ का स्वरूप है। ‘हान’ का अर्थ मोक्ष है। कहने का आशय यह है कि अविद्या के अभाव से बुद्धि और जीवात्मा के अज्ञानजनित संयोग का अभाव हो जाता है। उससे जीवात्मा के बन्धन का नितान्त विनाश हो जाता है। यह हान है और मोक्ष है। इसी को आत्मा का कैवल्य कहा जाता है। दुःख के कारण की निवृत्ति होने से दुःख की निवृत्ति हो जाती है। इसी को स्वरूप प्रतिष्ठा कहा है। ‘स्वरूपप्रतिष्ठा’ का इतना ही अभिप्राय नहीं है कि केवल जीवात्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है और इसी का नाम मोक्ष है। किन्तु जीवात्मा प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न बुद्धि आदि पदार्थों को अच्छे प्रकार से जानकर, अपने वास्तविक स्वरूप को जान जाता है, और ईश्वर के स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार कर उसके आनन्द को भोगता है और पराधीनता से छूटकर स्वतन्त्र हो जाता है। यह पूर्व भी कहा गया है कि जीवात्मा आनन्द स्वरूप नहीं है। ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करके आनन्दी होता है। यहाँ पर यह जानना चाहिये कि जीवात्मा ईश्वर की सहायता के बिना, केवल अपने सामर्थ्य से ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता। क्योंकि उसका स्वाभाविक ज्ञान, बल आदि सामर्थ्य अल्प है। इसलिये अविद्या के अभाव को सिद्ध करने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।
4. **हानोपाय—**इसका स्वरूप योगदर्शन सूत्र 2/26 ‘विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय’ में बतलाया गया है अर्थात् स्थिर (दृढ़) विवेकख्याति मोक्ष का उपाय है। इसके साथ ही विद्या, धर्माचरण, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध (निष्काम) कर्म तथा शुद्ध उपासना आदि भी मोक्षप्राप्ति के उपाय हैं। ‘हानोपाय’ का अर्थ ‘मोक्षप्राप्ति का उपाय’ है। कहने का आशय यह है कि मोक्ष का उपाय होने के कारण विवेकख्याति के स्वरूप को अच्छे प्रकार से जान लेना चाहिये। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाण से वस्तु का स्वरूप जाना जाता है। जो अनुमान और शब्द प्रमाण से ज्ञान होता है उसकी गणना विवेकख्याति में नहीं है। क्योंकि उस ज्ञान से आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और शरीर के स्वरूप की पृथक्-पृथक् अनुभूति नहीं होती। परन्तु विवेकख्याति से इन पृथक्-पृथक् पदार्थों की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है इसलिये विवेकख्याति को मोक्ष का विशेष उपाय कहा है। अविप्लवा विवेकख्याति की प्राप्ति के लिये सम्प्रज्ञात समाधि का विशेष अभ्यास करना पड़ता है। सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति अभ्यास वैराग्य से होती है। सम्प्रज्ञात समाधि की अपरिपक्व अवस्था में विवेकख्याति विचलित होती रहती है। सांसारिक विषय भोगों के संस्कार इसके विचलित होने के कारण हैं। जब तक वे संस्कार दग्धबीजभाव को प्राप्त नहीं होते तब तक विवेकख्याति अस्थिर होती रहती है। दीर्घकालपर्यन्त योगाभ्यास करते रहने से अशुभ संस्कार दग्धबीज भाव की अवस्था में चले जाते हैं। इस स्थिति में विवेकख्याति सतत स्थिर बनी रहती है। यही मोक्ष का उपाय है। इसी को

‘अविप्लवा विवेकख्याति’ कहते हैं। जब व्यक्ति को वैराग्य होता है, तब उसका ज्ञान बढ़ता रहता है परन्तु लौकिक संस्कारों के कारण सम्प्रज्ञात समाधि मध्यम—मध्य में भंग होती रहती है। यह विवेकख्याति की विप्लव अवस्था है। इसको यम—नियमों के पालन से ईश्वरप्रणिधानादि साधनों से अविप्लव अवस्था में ले जाना चाहिये। इससे मिथ्याज्ञान की निवृत्ति और परवैराग्य की उत्पत्ति होती है। परवैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि और ईश्वर साक्षात्कार होता है। ईश्वरसाक्षात्कार से योगी मोक्ष का अधिकारी बनता है तब मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि ईश्वर साक्षात्कार होते ही योगी मोक्ष का भागी नहीं होता। मोक्ष का अधिकारी बनने के लिये दीर्घकाल पर्यन्त अभ्यास की अपेक्षा रहती है। योगदर्शन कार ने 3/9 में यह कहा है कि व्युत्थानसंस्कार के अभिभूत होने पर और निरोधसंस्कारों के उद्बुद्ध होने से असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है और व्युत्थानसंस्कारों से निरोध संस्कारों के अभिभूत होने से असम्प्रज्ञात समाधि भंग हो जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर साक्षात्कार होते और असम्प्रज्ञात समाधि साक्षात् मोक्ष का उपाय है।

बोध प्रश्न—1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइयें।
 - I. ‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोध’ किसकी परिभाषा है। (योग/वैराग्य)
 - II. स्थिरविवेकख्याति किसका उपाय है। (मोक्ष/योग)
 - III. जब तमोगुण का अधिक मात्रा में उभार होता है तब चित्त की अवस्था है। (मूढावस्था/विक्षिप्तावस्था)
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
 - I. जब सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है तब साधक पहुँच जाता है। (धर्ममेघ समाधि/अधर्ममेघ समाधि)
 - II. असम्प्रज्ञात समाधि को कहते हैं। (निर्बीज समाधि/सबीज समाधि)

बोध प्रश्न—2

1. हेय को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....
2. हेयहेतु को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

योग का अर्थ, परिभाषा एवं वैशिष्ट्य को स्पष्ट कीजिए?

2.5 सारांश

पातंजल योगदर्शन में योग का अर्थ चित्त की वृत्तियों के निरोध से है। जिसमें चित्त की चार अवस्थाएँ हैं—क्षिप्तावस्था, मूढावस्था, विक्षिप्तावस्था एवं निरुद्धावस्था है तथा निरुद्धावस्था में असम्प्रज्ञात समाधि होती है। असम्प्रज्ञात समाधि में मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त योग के वैशिष्ट्य के रूप में पातंजल योगसूत्र के द्वितीय पाद साधनपाद में हेय, हेयहेतु, हान तथा हानोपाय को बताया गया है। इस प्रकार **इकाई-02 योग, अर्थ, परिभाषा एवं वैशिष्ट्य** के अन्तर्गत योग का अर्थ, परिभाषा एवं उसके वैशिष्ट्य विषय का विवेचन किया गया।

2.6 शब्दावली

हेय	—	दुःख अर्थात् त्याज्य
हेयहेतु	—	दुःख का कारण
हान	—	मोक्ष
हानोपाय—		मोक्षप्राप्ति के उपाय
सतत्	—	निरन्तर

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम. हिरियन्ना, मोतीलाल बनारसीदास, 2005।
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिंहा, 2013।
- सांख्यदर्शन, डॉ. विनय, डायमण्ड बुक्स, 2008।
- हिन्दी न्याय दर्शन, आचार्य दुण्डिराज शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी, 1999।
- न्याय एवं वैशेषिक दर्शन, श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि, 2002।
- पातंजल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीरशास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999

2.8 बोध प्रश्न/उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. (i) योग (ii) मोक्ष (iii) मूढावस्था
2. (i) धर्ममेघ समाधि (ii) निर्बीज समाधि

बोध प्रश्न-2

1. **हेय**—इसके स्वरूप को महर्षि पतंजलि जी ने योगदर्शन द्वितीय पाद के सोलहवें सूत्र 'हेयं दुःखमनागतम्' में स्पष्ट किया है। इस सूत्र के अनुसार भविष्य में आने वाले दुःख को ही हेय अर्थात् त्याज्य कहा गया है अर्थात् जो दुःख अभी प्राप्त नहीं हुआ है उसे ही दूर किया जा सकता है, उससे ही बचा जा सकता है। उसे इस प्रकार से भी समझ सकते हैं कि जो दुःख भूतकाल में भोग लिया है, वह छोड़ने योग्य नहीं है क्योंकि वह अब भोक्ता के समीप नहीं है। और जो दुःख वर्तमान क्षण में भोगा जा रहा है, वह आगामी क्षण में नहीं रहेगा, उसका भी त्याग नहीं हो सकता है। अतएव जो भविष्यकालिक दुःख है, वही छोड़ने योग्य अर्थात् त्याज्य है। इस दर्शन में इसी का पारिभाषिक नाम 'हेय' है। कहने का आशय यह है कि जो दुःख भूतकाल में भोग लिया है वह छोड़ने योग्य नहीं है क्योंकि वह अब भोक्ता के समीप नहीं है। और जो दुःख वर्तमान क्षण में भोगा जा रहा है, वह आगामी क्षण में समाप्त हो जायेगा, उसका भी त्याग नहीं हो सकता, इसलिये जो भविष्यत् काल में आने वाला दुःख है, वही छोड़ने योग्य है। बाधा, पीड़ा, अशान्ति, बन्धन, पराधीनता का नाम दुःख है। अथवा जिससे पीड़ित होकर प्राणी उसका नाश करने का प्रयत्न करते हैं, वह दुःख है। इसलिये दुःख एक वस्तु है, अभाव का नाम दुःख नहीं है। यदि अभाव का नाम दुःख होता तो उसके त्याग का विधान करना व्यर्थ हो जाता। इसलिये दुःख का गुण है तब दुःख की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति अनागत दुःख को और दुःख के कारण को जान जाता है, वही दुःख से छूट सकता है।
2. **हेयहेतु**—इसके स्वरूप को द्वितीय पाद के सत्रहवें सूत्र—'द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः' में स्पष्ट किया गया है। हेयहेतु का अर्थ है दुःख का कारण। जीवात्मा का बुद्धि एवं समस्त प्राकृतिक पदार्थों के साथ जो अज्ञानपूर्वक सम्बन्ध है वह हेयहेतु कहलाता है। इसके अतिरिक्त अविद्या, अधर्म, कुसंस्कार आदि भी दुःख के कारण हैं। कहने का आशय यह है कि बुद्धि में जो सांसारिक पदार्थों के चित्र उतरते हैं, उनका अनुभव करने वाला जीवात्मा है। जिन पदार्थों का बुद्धि में चित्र उतरता है उनको 'दृश्य' कहते हैं। प्रकृति को भी दृश्य कहते हैं क्योंकि इसी से बुद्धि, अहंकार आदि समस्त दृश्य जगत् उत्पन्न होता है और इस दृश्य से अज्ञान के कारण जीवात्मा का संयोग होता है। उसी संयोग से दुःख की उत्पत्ति होती है। दृश्य अयस्कान्तमणि के तुल्य है। अयस्कान्तमणि (चुंबक) समीपता के कारण लोहे को अपनी ओर खींच लेती है। वैसे ही यह दृश्य जीवात्मा का समीपता के कारण उपकार करता है। यदि जीवात्मा दृश्य के साथ स्वस्वामिसम्बन्ध बना लेता है तो दृश्य इसके बन्धन का कारण बन जाता है। यदि जीवात्मा दृश्य के साथ स्वस्वामिसम्बन्ध बना लेता है तो दृश्य इसके बन्धन का कारण बन जाता है। बुद्धि जीवात्मा के अनुभव का विषय बनती है अर्थात् जीवात्मा अनुभव करने वाला कर्ता और बुद्धि अनुभव क्रिया का कर्म बनती है। चेतन पुरुष के सानिध्य से बुद्धि चेतन

सदृश स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। वास्तव में बुद्धि जड़ पदार्थ है। बुद्धि का उपादान कारण प्रकृति है और वह एक स्वतंत्र पदार्थ है। परन्तु जीवात्मा के भोग और अपवर्ग को सिद्ध करने वाली होने से परतंत्र है। जीवात्मा दृक्शक्ति और बुद्धि दर्शनशक्ति इन दोनों का प्रयोजनकृत एवं प्रवाह से अनादि संयोग बन्धन का कारण है।

योग, अर्थ, परिभाषा
एवं वैशिष्ट्य

अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।



इकाई 3 समाधिपाद में प्रतिपादित योगवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 योग चित्तवृत्ति का स्वरूप
- 3.3 योग चित्तवृत्तियों के स्वभावगत भेद—क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट
- 3.4 योगदर्शन में पाँच वृत्तियाँ
 - 3.4.1 प्रमाण वृत्ति
 - 3.4.2 विपर्यय वृत्ति
 - 3.4.3 विकल्प वृत्ति
 - 3.4.4 निद्रा वृत्ति
 - 3.4.5 स्मृति वृत्ति
- 3.5 सारांश
- 3.6 शब्दावली
- 3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप—

- योग चित्तवृत्ति का स्वरूप को जान सकेंगे।
- योग चित्तवृत्ति का स्वभावगत भेद क्लिष्ट और अक्लिष्ट को जान सकेंगे।
- योग दर्शन में पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत प्रमाण वृत्ति को जान सकेंगे।
- योग दर्शन में पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत विपर्यय वृत्ति को जान सकेंगे।
- योग दर्शन में पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत विकल्प वृत्ति को जान सकेंगे।
- योग दर्शन में पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत निद्रा वृत्ति को जान सकेंगे।
- योग दर्शन में पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत स्मृति वृत्ति को जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

चित्त वस्तुतः एक जलाशय की भाँति शान्त है। इस जलाशय में यदि एक कंकड़ फेंका जाए तो तरंग उत्पन्न होती है। यह तरंगे गोल-गोल घूमती हुयी केन्द्र से परिधि की ओर आती है। इसमें बाह्य विचार रूपी कंकड़ पड़ने से तरंगे उत्पन्न होती है, जिन्हे वृत्तियाँ कहा जाता है। ये वृत्तियाँ गोल-गोल घूमना या वर्ताव करती हैं। य चित्त की वृत्तियाँ हमारे चित्त में उठती रहती हैं। जब तक चित्त रूपी महा समुद्र (जलाशय) में तरंगे उठती रहती हैं तब तक चन्द्रमा का विम्ब उसमें स्पष्ट नहीं दिखाई देता है। इस

प्रकार चित्त में वासना की तरंगों के उठते रहने के कारण ही उस आत्म ज्योति का बोध नहीं हो पाता है। इन तरंगों को रोक देने से ही आत्मतत्त्व का बोध ठीक उसी प्रकार हो पाता है, जिस प्रकार जल में तरंग होने पर चन्द्रमा का प्रतिविम्ब नहीं दिखाई देता है। परन्तु तरंगों के रुक जाने पर चन्द्रमा का प्रतिविम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट किया है कि इन चित्त वृत्तियों के अभाव होने पर ही साधक साधना में प्रवृत्त होता है तथा आत्म ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार **इकाई-03 समाधिपाद में प्रतिपादित योगवृत्तियाँ** के अन्तर्गत योग चित्तवृत्ति का स्वरूप तथा उसके स्वभावगत भेद क्लिष्ट और अक्लिष्ट तथा योग दर्शन में पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत प्रमाण वृत्ति, विपर्यय वृत्ति, विकल्प वृत्ति, निद्रा वृत्ति एवं स्मृति वृत्ति का अध्ययन किया जायेगा।

3.2 योग चित्तवृत्ति का स्वरूप

वृत्तिशब्द वृत्त वर्तने धातु में 'ति' प्रत्यय लगने से बनता है। जिसका अर्थ है—बर्ताव करना या गोल घूमना। चित्त जो बर्ताव करता है, या कार्य करता है वह सबवृत्तियों का रूप ले लेता है। जिस प्रकार जल में वर्तुलाकार गोल-गोल लहरे उठती हैं, उसी प्रकार चित्त में भी एक के बाद एक वृत्तियाँ उठती हैं। हमारा चित्त कुछ न कुछ विचार या कल्पना आदि करता रहता है। वाह्य विचार जो हमारे चित्त में हलचल यापरिणाम उत्पन्न करते हैं, इन्हीं परिणामों को वृत्तियाँ कहते हैं। इन्द्रियों का विषयों से सम्पर्क में आने से वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

महर्षि पतंजलि ने योग को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’ अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् रुक जाना योग है। योग एक संकल्प साधना है। यह एक ऐसा विज्ञान है जिसमें अपनी इन्द्रियों को वश में करके चेतन आत्मा से संयुक्त हो सकते हैं। योग एक अनुशासन है। यह न कोई ग्रन्थ है ना कोई शास्त्र ही है। यहयोग मनुष्य के जीवन को अनुशासित करने वाला विज्ञान है। मनुष्य के शरीर, इन्द्रियाँ मन सभी को नियन्त्रित कर पूर्व अनुशासन प्राप्त कराने का विज्ञान है। इस चित्त में वासनाओं का पुंज एकत्रित है। वह भी जन्म जन्मान्तर के कर्म-संस्कारों का पुंज इसमें विद्यमान है। जिसमें हमारी तरंगें (वासना रूपी) उठती रहती हैं। जिस प्रकार बादलों के कारण या बादलों के आवरण से आकाश दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार चित्त में उठने वाली तरंगों के कारण आत्मा का प्रकाश दिखाई नहीं देता है। चैतन्य आत्मा से परे है। ये चित्त की वृत्तियाँ बहिर्मुखी हैं जो सदा संसार की ओर उन्मुख रहती हैं। इसलिए मनुष्य का मनचंचल इन्हीं चित्त की वृत्तियों के कारण बना रहता है। इन तरंगों को ही वृत्तियाँ कहा गया है। ये चित्त पर पड़ने वाली तरंगें वृत्तियाँ ही हैं। महर्षि पतंजलि इन वृत्तियों को समझाते हुए कहते हैं कि जब इन वृत्तियों का सर्वथा अभाव हो जाता है तब ही आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित होती है। क्योंकि जब आत्मा का संयोग वृत्तियों के साथ में होता है तब आत्मा वृत्तियों के साथ मिलकर वृत्तियों के समान ही अन्य वस्तुओं को देखती है। आत्मा उस समय स्वयं को नहीं देख सकती है तथा उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता है। परन्तु जब वृत्तियाँ रुक जाती हैं तब उसे अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। जिस प्रकार अपना स्वरूप दर्पण में देखे तो उसके आस पास की सभी वस्तुएँ दिखाई देती हैं। किन्तु इन्हें तो आँख देख रही है। वह नहीं दिखाई देती है। तथा देखने वाली आँख को देखने पर फिर अन्य कुछ भी नहीं दिखाई देता है। इसी प्रकार उस आत्मा (द्रष्टा) की भी स्थिति ऐसी ही है। चित्त का कारण प्रकृति है तथा इसमें भेद बुद्धि के कारण दिखाई देता है।

3.3 योग चित्तवृत्तियों के स्वभावगत भेद—क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट

महर्षि पतंजलि ने चित्त की पाँच वृत्तियाँ बताई हैं। तथा उनके प्रत्येक के क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो-दो भेद हैं—‘वृत्तयः पच्यतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः।’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/5) अर्थात् वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं। तथा उनमें प्रत्येक के क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो-दो भेद हैं। क्लिष्ट वृत्ति वह है, जिनसे मनुष्य कष्ट या दुःख का अनुभव करता है। दूसरी वृत्ति अक्लिष्ट वृत्ति है, जिनसे मनुष्य दुःख का अनुभव नहीं करता है बल्कि सुख का अनुभव करता है। अतः पहली वृत्ति को क्लिष्ट अर्थात् दुःख प्रदान करने वाली कहा गया है तथा दूसरी अक्लिष्ट अर्थात् सुख प्रदान करने वाली वृत्ति है। उदाहरण स्वरूप जब हम कोई अच्छा दृश्य जैसे सुन्दर उद्यान या अपनी पसन्द की वस्तु को देखते हैं तो मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती है। चित्त में अच्छे व सकारात्मक विचार घूमने लगते हैं। कहने का आशय यह है कि जिन दृश्यों या विचार धारा से हमें सुख की अनुभूति हुई, वह अक्लिष्ट वृत्ति होती है। इसके विपरीत यदि हम मार्ग में कोई दुर्घटना देखते हैं अर्थात् ऐसे दृश्य देखते हैं जो कि हमें दुःखी करते हैं वह क्लिष्ट वृत्ति कहलाती है। इन दोनों उदाहरणों में दृश्य मात्र के अनुभव अलग-अलग हैं। एक से सुख की प्रसन्नता की अनुभूति हुई तथा दूसरी घटना से दुःख की अनुभूति होती है।

3.4 योग दर्शन में पाँच वृत्तियाँ

महर्षि पतंजलि ने वृत्तियों को पाँच भागों में बाँटा है— ‘प्रमाणविपर्ययविकल्प निद्रास्मृतयः।’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/6) अर्थात् प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति ये पाँच वृत्तियाँ हैं। हमारे चित्त में जो वृत्तियाँ समय-समय उठती रहती हैं, तथा हमारे चित्त को चलायमान करती रहती हैं।

3.4.1 प्रमाण वृत्ति

प्रमा (यथार्थ ज्ञान) करण (साधन) को प्रमाण कहा जाता है। इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्तवास्तविक ज्ञान से चित्त में उत्पन्न हुई वृत्ति को प्रमाण वृत्ति कहते हैं। जिस ज्ञान से मैं सुनता हूँ, मैं देखता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं यह वेद शास्त्र से जानता हूँ, इस प्रकार के ज्ञान को बोध कहते हैं। यह बोध यदि यथार्थ हो तो प्रमा कहलाता है और जिसवृत्ति से प्रमा अर्थात् यथार्थबोध उत्पन्न होता है उसे प्रमाण वृत्ति कहते हैं। यह प्रमाण इन्द्रियजनित ज्ञान है। इस प्रमाण के तीन भेद हैं—‘प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/7) अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम तीन प्रकार की प्रमाण वृत्ति हैं। यह प्रमा चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा व अनुमान द्वारा अथवा श्रवण द्वारा या आप्तवचन द्वारा चित्त वृत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए इस चित्त वृत्ति को प्रमा (ज्ञान) का कारण होने से प्रमाण कहा जाता है। यह प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है—

- प्रत्यक्ष प्रमाण अर्थात् इन्द्रिय जनित ज्ञान।
- अनुमान प्रमाण अर्थात् इन्द्रियगत अनुभव न होकर अनुमान के आधार पर ज्ञान।
- आगम प्रमाण अर्थात् यह शब्द प्रमाण है, जो आप्त वाक्य या श्रवण द्वारा उत्पन्न होता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण—इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान या अनुभूति को प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति कहते हैं। इसी को यथार्थ अनुभव या सत्य ज्ञान भी कहते हैं। किसी वस्तु का ज्ञान

जब हमे इन्द्रियों की सहायता से होता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैसे—आँखों देखी, जिह्वा से स्वाद का ज्ञान, कानों से श्रवण, नासिका से गन्ध का ज्ञान तथा त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होना प्रत्यक्ष प्रमाण है। जब यह ज्ञान भ्रम या संशय रहित होता है। तब वह सत्य ज्ञान होता है। परन्तु यह प्रत्यक्ष प्रमाण भी क्लिष्ट व अक्लिष्ट दोनों हो सकता है। यदि यह ज्ञान संसार की अनित्यता का बोध करा कर ईश्वर की ओर उन्मुख करा देता है तो यह अक्लिष्ट प्रमाण वृत्ति है। किन्तु यदि इस वृत्ति से संसार की माया व प्रपंच भोग सत्य होने लगे तथा ईश्वर के प्रति अनास्था उत्पन्न हो जाए तब यह क्लिष्ट वृत्ति है।

अनुमान प्रमाण—किसी अन्य के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना, अनुमान प्रमाण है। जब वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियगत अनुभव न होकर अनुमान के आधार पर हो। किसी पूर्व दृष्ट पदार्थों के चिन्ह देखकर हमे उसी पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होता है। जैसे धुँएँ को देख कर पहाड़ी पर आग का अनुमान लगना। बादलों को देख कर वर्षा का अनुमान आदि। अनुमान प्रमाण पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतयोदृष्ट तीन प्रकार का होता है। इस अनुमान प्रमाण के द्वारा यदि योग साधको में श्रद्धा बढ़ती है तब वह अक्लिष्ट वृत्ति है और यदि इस वृत्ति के द्वारा सांसारिक भोग पदार्थों के प्रति रुचि बढ़ती है, तब वह क्लिष्ट वृत्ति होती है।

आगम प्रमाण—आगम प्रमाण वह ज्ञान है, जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमान के आधार पर न होकर विद्वानों द्वारा या ज्ञानियों द्वारा कहे गये वचन तथा शास्त्रों के वचनों के आधार पर होता है। वेद, शास्त्र और महापुरुषों के वचनों को आगम प्रमाण कहते हैं। जब किसी वस्तु अथवा तत्त्व के ज्ञान का कारण ना तो इन्द्रियाँ हो न ही उनका अनुमान किया जाए तो उस ज्ञान को आगम प्रमाण से प्राप्त ज्ञान कहते हैं। योगसूत्र, व्यासभाष्य 1/7 में वर्णन किया गया है—

“आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः परत्र स्वबोधसंक्रातये।
शब्देनोपदिष्यते शब्दात् तदर्थविषयावृत्तिः श्रोतुरागमः॥”

अर्थात् आप्त पुरुष अथवा आप्त ग्रन्थों द्वारा प्रत्यक्ष तथा अनुमान से ज्ञात विषय को दूसरे में ज्ञान उत्पन्न करने के लिए शब्द के द्वारा उपदेश दिया जाता है। उस शब्द से उस अर्थ को विषय करने वाली जो श्रोता की वृत्ति है, वह आगम प्रमाण कहलाती है। यदि देखा जाए तो स्वर्ग आदि को चक्षु से ग्रहण नहीं किया जा सकता है और वह न किसी के द्वारा अनुमानित है। जबकि स्वर्ग की मान्यता मानी जाती है। क्योंकि वेद आदि ग्रन्थों में स्वर्ग और नरक की मान्यता मानी गयी है। इसलिए ज्ञानियों द्वारा कहे गये कथन जो शास्त्रों में संग्रहीत है आगम प्रमाण के अन्तर्गत आते हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि मनीषियों के अनुभव के आधार पर लिखे गये हैं। इन कथनों से भोगे से वैराग्य होकर यदि मनुष्यका चित्त योग्य साधना की ओर प्रवृत्त होता है, तब वह अक्लिष्ट वृत्ति है।

3.4.2 विपर्यय वृत्ति

महर्षि पतंजलि ने विपर्यय का वर्णन इस प्रकार किया है—
‘विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।’ पातंजलयोगसूत्र, 1/8 अर्थात् विपर्यय मिथ्याज्ञान है, जो उस पदार्थ के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है। किसी भी वस्तु को देखकर या सुनकर हम उस वस्तु से भिन्न किसी अन्य वस्तु को समझ लेते हैं, वही विपर्यय वृत्ति है। जैसे अन्धकार के कारण रस्सी को साँप समझ लेना तथा सीपी में चाँदी की भ्रान्ति हो

जाना तथा मरुस्थल में जल की भ्रान्ति (मृगमरीचिका)हो जाना है। विपर्यय वृत्ति को अविद्या भी कहते हैं। जब तक मनुष्य देह आदि को आत्मा समझता रहता है तब तक वह भविष्य में डूबा रहता है। इस अनित्य संसार को नित्यसमझता रहता है। योग साधना द्वारा ही इस अविद्या का नाश होता है। मनुष्य जब इस मिथ्याज्ञान को अपना कर योग साधना की ओर प्रवृत्त होता है। जब यह मिथ्याज्ञान मन में प्रसन्नता उत्पन्न करे तब यह अक्लिष्ट विपर्यय वृत्ति है। मिट्टी के पार्थिव में प्राण प्रतिष्ठित शिव का रूप देख कर पूजा अराधनाकरना है। जिससे चित्तशान्त व प्रसन्न होता है।

3.4.3 विकल्प वृत्ति

किसी वस्तु के उपस्थित न रहते हुए भी शब्द ज्ञान मात्र से उत्पन्न चित्त वृत्ति को विकल्प कहते हैं—‘शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।’ (पातञ्जलयोगसूत्र, 1/9) अर्थात् वस्तु के ना रहते हुए भी शब्द ज्ञान मात्र से उत्पन्न चित्त वृत्ति को ‘विकल्प’ कहते हैं। विकल्प वृत्ति में शब्दों की प्रमुखता होती है। तथा शब्दों को ही प्रमाण मान लेते हैं। प्रायः देखा जाता है कि संसार का कोई भी कार्य करने से पहले कल्पना ही होती है। सभी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, संगीत व कविताएँ आदि मनुष्य की कल्पनाएँ हैं। यह कल्पनाएँ चित्त की एक वृत्ति हैं। इन कल्पनाओं का उपयोग सकारात्मक कार्यों में किया जाए तब यह अक्लिष्ट वृत्ति है। जैसे साधक ने ईश्वर का स्वरूप कभी देखा नहीं है। साधक ग्रन्थों को पढ़कर व सुनकर ईश्वर के स्वरूप की, उसके अलौकिक स्वरूप की कल्पना कर ध्यान लगता है तथा ध्यान के द्वारा क्लेशों के नाश के साथ-साथ उसे आनन्द की प्राप्ति होती है,ऐसा विकल्प अक्लिष्ट कहलाता है। किन्तु यदि मनुष्य का मन काल्पनिक उड़ानों को भर कर भोग-विलास, संसारिक राग में लगता रहता है,तो वह विकल्प क्लिष्ट वृत्ति है।

3.4.4 निद्रा वृत्ति

निद्रा वृत्ति का स्वरूप महर्षि पतञ्जलि ने इसप्रकार प्रस्तुत किया है—‘अभाव प्रत्ययालम्बनावृत्तिनिद्रा।’ (पातञ्जलयोगसूत्र, 1/10) अर्थात् अभाव की प्रतीति को विषय करने वाली वृत्ति निद्रा है। कहने का आशय यह है कि जाग्रत तथा स्वप्नावस्था की वृत्तियों के अभाव की जो प्रतीति करती है, वह निद्रावृत्ति है। कई विद्वान व आचार्य निद्रा को वृत्ति नहीं मानते हैं। परन्तु योग में आचार्यों ने निद्रा को वृत्ति ही माना है। सांख्य के मतानुसार प्रमाण, विपर्यय, विकल्प के समान निद्रा भी एक वृत्ति है। यहाँ पर ज्ञान के अभाव की प्रतीति रहती है। इन्द्रियो से होने वाले ज्ञान का उस अवस्था में अभाव रहता है। यह वह सुषुप्ति अवस्था है, जिसे जाग्रत अवस्था और स्वप्न अवस्था में इन्द्रिय ज्ञान होते रहते हैं। ऐसा ज्ञान सुषुप्ति अवस्था में नहीं होता है। अतः निद्रा नामक वृत्ति को सुषुप्ति अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था को लोक व्यवहार में गहरी नींद कहते हैं। क्योंकि जब व्यक्ति निद्रा से जागता है तब वह कहता है कि आज मैं सुखपूर्वक सोया। निद्रा में भी उसे यह ज्ञान है कि वह सुखपूर्वक सोया। यह ज्ञान निद्रा की अवस्था में होता है। तब इसीका नाम निद्रा है। जो कि हमें नींद में भी सुख का अनुभव कराती है। जब गहरी नींद में मनुष्य को यह भान रहता है कि आज मैं सुखपूर्वक सोया, आज गहरी नींद आयी। इस प्रकार जब निद्रा से जाग जाने पर एक सुखद आनन्द की अनुभूति हो,शरीर में किसी प्रकार का आलस्य ना रहे, इन्द्रियाँ प्रसन्न हो तब उसे अक्लिष्ट वृत्ति कहते हैं। वही जब मनुष्य के जागने पर शरीर में तमोगुण की अधिकता थकान की अनुभूति हो, आसक्ति उत्पन्न हो तब वह क्लिष्ट कहलाती है। उदाहरण स्वरूप जिस प्रकार अन्धेरे कमरे में सभी वस्तुएँ छिपी रहती हैं। अन्धकार के कारण दिखाई नहीं दे रही है। किन्तु सभी वस्तुओं को छिपाने वाला

अन्धकार स्वयं दिखता है। और वह वस्तुओं के अभाव की प्रतीति कराता है। इसी प्रकार तमोगुण सुषुप्ति अवस्था में अन्धकार की तरह चित्त की सभी वृत्तियों को दबाकर स्वयं स्थिर रूप में प्रधान रहता है। परन्तु इस अवस्था में रजोगुण तनिक मात्र में रहते हुए वह इस अभाव की प्रतीति कराता है। चित्त के ऐसे परिणाम को निद्रा वृत्ति कहा जाता है।

3.4.5 स्मृति वृत्ति

महर्षि पतंजलि स्मृति का वर्णन योग दर्शन में इस प्रकार से किया है—
'अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।' (पातंजलयोगसूत्र, 1/11) अनुभव किये हुए विषय का फिर उभर आना स्मृति है। अनुभव के आधार पर जब हमें किसी विषय का ज्ञान प्राप्त होता है तब उसको अनुभूत विषय कहते हैं। सूत्र में 'असम्प्रमोषः' पद में सम्+प्र+मुष् स्तेये=चोरी करना+धम् प्रत्यय हुआ है। जिसका अर्थ है—अच्छी प्रकार से भूल जाना अथवा चुराया जाना तथा सम्प्रमोष से नञ् समास करने पर उससे अर्थ भिन्न हो जाता है। इस प्रकार इसका अर्थ है कि अनुभूत विषय का पूर्ण रूपेण व्यक्ति के अधिकार में बने रहना। कहने का आशय यह है कि मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करता है, उसके संस्कार मन में एकत्र हो जाते हैं, और वे संस्कार कुछ समयपश्चात् उचित निमित्त को पाकर उपस्थित हो जाते हैं, तब चित्त की इस वृत्ति को स्मृति कहते हैं। हमारे चित्त में अनुभव के अनुरूप संस्कार बनते हैं, और संस्कार के अनुरूपस्मृति होती है। स्वप्न की दशा में स्मृतियाँ अव्यवस्थित होती हैं। इसका कारण रजोगुण व तमोगुण होता है। क्योंकि यह सत्य है कि अनुभव के बिना कोई भी स्मृति नहीं हो सकती है। जैसे जो जन्मान्ध हो उन्हें रूप वाली वस्तु का स्वप्न नहीं आता है। क्योंकि जब हम किसी भी वस्तु का अनुभव करते हैं तभी वह वस्तु और उसका ज्ञान दोनों प्रकाशित रहते हैं। उन अनुभव से ही चित्त पर संस्कार पड़ते हैं। उन संस्कारों से ही स्मृति होती है। यह स्मृति भी दो प्रकार की होती है। जो स्मृति हमें उत्साह, श्रद्धा, वैराग्य की ओर उन्मुख करे और जो योग साधना की ओर आत्म ज्ञान में सहायक होती है, वह अक्लिष्ट वृत्ति होती है। किन्तु जो वृत्ति योग साधना में बाधक बनती है, वह क्लिष्ट वृत्ति है। उदाहरण—माता—पिता द्वारा हमें जो संस्कार मिले होते हैं। वह स्मृति रूप में मन में एकत्र होते हैं। बचपन में सिखाये गये अच्छे उपदेश या ये संस्कार कभी नष्ट नहीं हो सकते हैं। तथा ना ही उन्हें कोई चुरा सकता है। क्योंकि जो ज्ञान हमें सिखाया जाए या अनुभव द्वारा ग्रहण किया जाए वह ज्ञान नष्ट नहीं होता है। आवश्यकता पड़ने पर वह ज्ञान स्मृति के रूप में हमारे सामने आ जाता है। ये अविद्या रूपी क्लिष्ट वृत्ति सभी दुःखों का मूल है इस प्रकार ये वृत्तियाँ क्लिष्ट होने पर क्लेश जनक हैं। इन सभी वृत्तियों के निरोध हो जाने पर सम्प्रज्ञात योग सिद्ध होता है।

बोध प्रश्न—1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइयें।

- I. चित्त की कितनी वृत्तियाँ हैं। (पाँच/तीन)
- II. प्रमाण वृत्ति कितने प्रकार की है। (तीन/दो)
- III. शब्द ज्ञान मात्र से उत्पन्न वृत्ति है। (आगम प्रमाण वृत्ति/विपर्यय)
- IV. कौन सी वृत्ति के कारण मिथ्याज्ञान होता है। (विपर्यय वृत्ति/प्रमाणवृत्ति)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- I. अनुमान प्रमाण के द्वारा योगसाधकों में श्रद्धा बढ़ती है तब वह.....वृत्ति है। (अनुमान प्रमाण वृत्ति/आगम प्रमाण वृत्ति)
- II. विपर्यय वृत्ति को.....कहते हैं। (अविद्या/विद्या)
- III. वृत्तियाँ स्वभाव से प्रकार की होती हैं। (दो/चार)

बोध प्रश्न-2

1. विपर्यय वृत्ति को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. प्रमाण वृत्ति को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

योगदर्शन में पाँच वृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

3.4 सारांश

महर्षि ने योग उस अवस्था को कहा है जब हमारी समस्त चित्त की वृत्तियाँ समाप्त हो जाएँ। चित्त को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि मन, बुद्धि, अहंकार का सम्मिलित रूप ही चित्त है तथा इस चित्त में हमारे जन्म-जन्मों के संस्कार संग्रहित रहते हैं तथा हमारे इस चित्त को वृत्तियाँ विप्रेक्षित करती रहती हैं। ये वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं। तथा इन पाँचों प्रकार की वृत्तियाँ स्वभावगत क्लिष्ट (दुःख) व अक्लिष्ट (सुख) दोनों प्रकार की होती हैं। क्लिष्ट वृत्ति मनुष्य को भोग की ओर प्रवृत्त करती है। जबकि अक्लिष्ट वृत्ति मनुष्य को आत्म ज्ञान की प्राप्ति में सहायक है। महर्षि पतंजलि ने योग साधना में इन वृत्तियों को बाधक माना है। अतः इन वृत्तियों का निरोध होना आवश्यक है। यह स्थिति ही साधक को परम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होती है। इस प्रकार **इकाई-03 समाधिपाद में प्रतिपादित योगवृत्तियाँ** के अन्तर्गत योग चित्तवृत्ति का स्वरूप तथा उसके स्वभावगत भेद क्लिष्ट और अक्लिष्ट तथा योग दर्शन में पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत प्रमाण वृत्ति, विपर्यय वृत्ति, विकल्प वृत्ति, निद्रा वृत्ति एवं स्मृति वृत्ति का अध्ययन किया गया।

3.5 शब्दावली

विलष्ट	—	दुःख उत्पन्न करने वाली
अविलष्ट	—	सुख उत्पन्न करने वाली
प्रतिष्ठित	—	स्थित
चित्त	—	मन, बुद्धि, अहंकार का सम्मिलित रूप
प्रत्यक्ष	—	इन्द्रिय जनित ज्ञान
विपर्यय	—	झूठा ज्ञान

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातंजल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातंजल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पंत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. (i) पाँच (ii) तीन (iii) आगम प्रमाण वृत्ति (iv) विपर्यय वृत्ति
2. (i) अनुमान प्रमाण वृत्ति (ii) अविद्या (iii) दो

बोध प्रश्न-2

1. **प्रमाण वृत्ति**—प्रमा (यथार्थ ज्ञान) करण (साधन) को प्रमाण कहा जाता है। इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त वास्तविक ज्ञान से चित्त में उत्पन्न हुई वृत्ति को प्रमाण वृत्ति कहते हैं। जिस ज्ञान से मैं सुनता हूँ, मैं देखता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं यह वेद शास्त्र से जानता हूँ, इस प्रकार के ज्ञान को बोध कहते हैं। यह बोध यदि यथार्थ हो तो प्रमा कहलाता है और जिस वृत्ति से प्रमा अर्थात् यथार्थ बोध उत्पन्न होता है उसे प्रमाण वृत्ति कहते हैं। यह प्रमाण इन्द्रियजनित ज्ञान है। इस प्रमाण के तीन भेद हैं—**‘प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि’** (पातंजलयोगसूत्र, 1/7) अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम तीन प्रकार की प्रमाण वृत्ति हैं। यह प्रमा चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा व अनुमान द्वारा अथवा श्रवण द्वारा या आप्तवचन द्वारा चित्त वृत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए इस चित्त वृत्तिको प्रमा (ज्ञान) का कारण होने से

प्रमाण कहा जाता है। यह प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है—

1. प्रत्यक्ष प्रमाण अर्थात् इन्द्रिय जनित ज्ञान।
2. अनुमान प्रमाण अर्थात् इन्द्रियगत अनुभव न होकर अनुमान के आधार पर ज्ञान।
3. आगम प्रमाण अर्थात् यह शब्द प्रमाण है, जो आप्त वाक्य या श्रवण द्वारा उत्पन्न होता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण—इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान या अनुभूति को प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति कहते हैं। इसी को यथार्थ अनुभव या सत्य ज्ञान भी कहते हैं। किसी वस्तु का ज्ञान जब हमे इन्द्रियों की सहायता से होता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैसे—आँखों देखी, जिह्वा से स्वाद का ज्ञान, कानों से श्रवण, नासिका से गन्ध का ज्ञान तथा त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होना प्रत्यक्ष प्रमाण है। जब यह ज्ञान भ्रम या संशय रहित होता है। तब वह सत्य ज्ञान होता है। परन्तु यह प्रत्यक्ष प्रमाण भी क्लिष्ट व अक्लिष्ट दोनों हो सकता है। यदि यह ज्ञान संसार की अनित्यता का बोध करा कर ईश्वर की ओर उन्मुख करा देता है तो यह अक्लिष्ट प्रमाण वृत्ति है। किन्तु यदि इस वृत्ति से संसार की माया व प्रपंच भोग सत्य होने लगे तथा ईश्वर के प्रति अनास्था उत्पन्न हो जाए तब यह क्लिष्ट वृत्ति है।

अनुमान प्रमाण—किसी अन्य के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना, अनुमान प्रमाण है। जब वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियगत अनुभव न होकर अनुमान के आधार पर हो। किसी पूर्व दृष्ट पदार्थों के चिन्ह देखकर हमें उसी पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होता है। जैसे धुँएँ को देख कर पहाड़ी पर आग का अनुमान लगना। बादलों को देख कर वर्षा का अनुमान आदि। अनुमान प्रमाण पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतयोदृष्ट तीन प्रकार का होता है। इस अनुमान प्रमाण के द्वारा यदि योग साधकों में श्रद्धा बढ़ती है तब वह अक्लिष्टवृत्ति है और यदि इस वृत्ति के द्वारा सांसारिक भोग पदार्थों के प्रति रुचि बढ़ती है, तब वह क्लिष्ट वृत्ति होती है।

आगम प्रमाण—आगम प्रमाण वह ज्ञान है, जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमान के आधार पर न होकर विद्वानों द्वारा या ज्ञानियों द्वारा कहे गये वचन तथा शास्त्रों के वचनों के आधार पर होता है। वेद, शास्त्र और महापुरुषों के वचनों को आगम प्रमाण कहते हैं। जब किसी वस्तु अथवा तत्त्व के ज्ञान का कारण ना तो इन्द्रियाँ हो न ही उनका अनुमान किया जाए तो उस ज्ञान को आगम प्रमाण से प्राप्त ज्ञान कहते हैं। योगसूत्र, व्यासभाष्य 1/7 में वर्णन किया गया है—

“आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः परत्र स्वबोधसंक्रातये।

शब्देनोपदिष्यते शब्दात् तदर्थविषयावृत्तिः श्रोतुरागमः।।”

अर्थात् आप्त पुरुष अथवा आप्त ग्रन्थों द्वारा प्रत्यक्ष तथा अनुमान से ज्ञात विषय को दूसरे में ज्ञान उत्पन्न करने के लिए शब्द के द्वारा उपदेश दिया जाता है। उस शब्द से उस अर्थ को विषय करने वाली जो श्रोता की वृत्ति है, वह आगम प्रमाण कहलाती है। यदि देखा जाए तो स्वर्ग आदि को चक्षु से ग्रहण नहीं किया जा सकता है और वह न किसी के द्वारा अनुमानित है। जबकि स्वर्ग की मान्यता मानी जाती है। क्योंकि वेद आदि ग्रन्थों में स्वर्ग और नरक की मान्यता मानी गयी है। इसलिए ज्ञानियों द्वारा कहे गये कथन जो शास्त्रों में संग्रहीत हैं आगम प्रमाण के अन्तर्गत आते हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि मनीषियों के अनुभव के आधार

पर लिखे गये हैं। इन कथनों से भोगों से वैराग्य होकर यदि मनुष्यका चित्त योग्य साधना की ओर प्रवृत्त होता है, तब वह अक्लिष्ट वृत्ति है।

2. **विपर्यय वृत्ति**—महर्षि पतंजलि ने विपर्यय का वर्णन इस प्रकार किया है—‘विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।’ पातंजलयोगसूत्र, 1/8 अर्थात् विपर्यय मिथ्याज्ञान है, जो उस पदार्थ के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है। किसी भी वस्तु को देखकर या सुनकर हम उस वस्तु से भिन्न किसी अन्य वस्तु को समझ लेते हैं, वही विपर्यय वृत्ति है। जैसे अन्धकार के कारण रस्सी को साँप समझ लेना तथा सीपी में चाँदी की भ्रान्ति हो जाना तथा मरुस्थल में जल की भ्रान्ति (मृगमरीचिका) हो जाना है। विपर्यय वृत्ति को अविद्या भी कहते हैं। जब तक मनुष्य देह आदि को आत्मासमझता रहता है तब तक वह भविष्य में डूबा रहता है। इस अनित्य संसार को नित्यसमझता रहता है। योग साधना द्वारा ही इस अविद्या का नाश होता है। मनुष्य जब इस मिथ्याज्ञान को अपना कर योग साधना की ओर प्रवृत्त होता है। जब यह मिथ्याज्ञान मन में प्रसन्नता उत्पन्न करे तब यह अक्लिष्ट विपर्यय वृत्ति है। मिट्टी के पार्थिव में प्राण प्रतिष्ठित शिव का रूप देख कर पूजा अराधनाकरना है। जिससे चित्तशान्त व प्रसन्न होता है।

अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 वृत्ति निरोध के उपाय

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 वृत्ति निरोध के उपाय
 - 4.2.1 अभ्यास
 - 4.2.2 वैराग्य
- 4.3 अभ्यास और वैराग्य की साधना में बाधक तत्त्व
 - 4.3.1 नौ विघ्न
 - 4.3.2 पाँच उपविघ्न
- 4.4 सारांश
- 4.5 शब्दावली
- 4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप—

- वृत्तिनिरोध के प्रथम उपाय अभ्यास के बारे में जान सकेंगे।
- वृत्तिनिरोध के द्वितीय उपाय वैराग्य के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि ने योग साधना की प्राप्ति चित्त की वृत्तियों के सर्वथा अभाव के द्वारा ही प्राप्त कही है। चित्त जो कि मन, बुद्धि व अहंकार का सम्मिलित रूप है। चित्त शान्त जलाशय की भाँति है। परन्तु हमारे चित्त में वृत्ति रूपी लहरें इस शान्त जलाशय को तरंगित करती रहती हैं। लहरों के कारण जिस प्रकार मनुष्य चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब उस जलाशय में नहीं देख पाता, उसी प्रकार मनुष्य इन वृत्तियों की वासना रूपी तरंगों के निरन्तर उठते रहने के कारण आत्म तत्त्व का बोध तथा योग के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता है। इन वृत्तियों की तरंगों को सर्वथा रोक देने से ही हम आत्म तत्त्व के दर्शन कर पाते हैं। इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने उच्च कोटि के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य की साधना बताई है। केवल अभ्यास के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध सम्भव नहीं है बल्कि वैराग्य से भी चित्त वृत्तियों का निरोध होता है। इसलिए दोनों के द्वारा ही चित्त वृत्ति निरोध होता है। इस प्रकार **इकाई-04 वृत्ति निरोध के उपाय** के अन्तर्गत अभ्यास एवं वैराग्य का अध्ययन किया जायेगा।

4.2 वृत्ति निरोध के उपाय

महर्षि पतंजलि ने समस्त योग का सार एक ही सूत्र में रखा है कि चित्त की वृत्तियों का सर्वथा अभाव ही योग है। इन चित्त की वृत्तियों का निरोध (अभाव) अभ्यास और वैराग्य से होता है। महर्षि पतंजलि ने वर्णन किया है कि साधक को भटकाने वाला उसका अपना चित्त ही है, व चित्त की वृत्तियाँ ही हैं। इन चित्त की वृत्तियों के निग्रह से अर्थात् निरोध से ही योग सधता है किन्तु यह अभ्यास और वैराग्य से सम्भव है। चित्त की स्थिरता के लिए बार-बार प्रयत्न करना ही अभ्यास है तथा वैराग्य अर्थात् बिना राग के, जिसे यह कहा जा सकता है कि जिस मनुष्य को कोई आसक्ति नहीं है। महर्षि पतंजलि ने देखे गये तथा सुने गये विषयों के प्रति तृष्णा का अभाव हो जाना ही वैराग्य कहा है। वैराग्य शब्द भारतीय अध्यात्म में चिर-परिचित शब्द है। वैराग्य अर्थात् बिना राग के, यह कहा जा सकता है। मनुष्य को विषय भोगों के प्रति कोई भी आसक्ति ना हो वही वैराग्य है। भोगों की वासना का क्षय आत्म ज्ञान से ही हो पाता है। संसार से दुःखी हो कर उससे दूर भागना वैराग्य नहीं कहा जा सकता। विवेक ज्ञान द्वारा जब सत्-असत् की पहचान, सही गलत की ठीक समझ, उचित अनुचित का सही ज्ञान, नाशवान व अविनाशी तत्व का बोध होने लगे तो समझना चाहिए कि वैराग्य सधने लगा। चित्त की वृत्तियाँ को रोकने के लिए एक साधन अभ्यास है तथा दूसरा वैराग्य है।

4.2.1 अभ्यास

अभ्यास करते-करते एकदम जड़मति भी सुविज्ञ तथा सुज्ञान हो जाते हैं जैसे कोमल रस्सी से कठोर सिल (पाषाण) पर भी निशान पड़ जाते हैं, उसी प्रकार अभ्यास के बल पर मनुष्य कठिन से कठिन कार्य भी करने में समर्थ हो जाता है। अभ्यास के बल पर मनुष्य ही नहीं वरन् पशु-पक्षी भी असम्भव से असम्भव कार्य को सम्भव कर देता है।

चित्त की स्थिरता के लिए किये जाने वाला प्रयत्न अभ्यास है। महर्षि पतंजलि ने अभ्यास के बारे में कहा है कि—‘तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।’ पातंजलयोगसूत्र 1/13 अर्थात् चित्त की स्थिरता के लिए जो निरन्तर प्रयत्न किया जाता है, वही अभ्यास है। इस प्रकार समझा जा सकता है, कि मनुष्य का चित्त चंचल है, जो रजोगुण, तमोगुण वृत्तियों के कारण ही विषयों में रमण करता रहता है। किन्तु सतोगुण वृत्ति के उत्पन्न होने पर चित्त की चंचलता दूर हो जाती है तथा चित्त शान्त होता है। इसी स्थिति को एकाग्रता कहते हैं। इसी एकाग्रता को हमेशा बनाये रखने के लिए जो पूर्ण इच्छा शक्ति के साथ निरन्तर प्रयत्न किया जाता है। उसी का नाम ‘अभ्यास’ है।

अब प्रश्न उठता है कि अभ्यास किसका किया जाए। चित्त की एकाग्रता को स्थिर बनाये रखने के लिए योगानुष्ठान करना चाहिए। योग साधना में लगे रहना चाहिए। योग के अनुष्ठान, क्रियायोग, अष्टांग योग, अभ्यास और वैराग्य है। ये अनुष्ठान करने से ही मनुष्य को समाधि की प्राप्ति होती है। इन अनुष्ठानों को करने के लिए अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास किस प्रकार दृढ़ता के उपाय महर्षि पतंजलि ने समाधि पाद के 14वें सूत्र में अभ्यास में दृढ़ता नहीं आती है। इसे लम्बे समय तक धैर्य व दृढ़ विश्वास के साथ करने से ही अभ्यास दृढ़ता के लिए साधक को साधना के प्रति भाव भरी श्रद्धा का होना आवश्यक है। चौथा—दृढ़ता के इने उपायों को अपनाने से साधक अपने लक्ष्य तक अवश्य पहुँच पाता है।

महर्षि पतंजलि ने अभ्यास के दृढ़ होने का प्रकार बतलाते हुए कहा है कि—‘स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमिः’ अर्थात् कहने का आशय यह है कि अपने साधन के अभ्यास को दृढ़ बनाने के लिए साधक को चाहिए कि साधन में कभी उकतावें नहीं। यह दृढ़ विश्वास रखें कि किया हुआ अभ्यास कभी भी व्यर्थ नहीं हो सकता है, अभ्यास के बल से मनुष्य अपने निःसन्देह लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। यह समझकर अभ्यास के लिए काल की अवधि न रखे, आजीवन अभ्यास करता रहे, साथ ही यह भी ध्यान रखे कि अभ्यास में व्यवधान न पड़ने पावे, निरन्तर अभ्यास चलता रहे तथा अभ्यास में तुच्छ बुद्धि न करें, उसकी अवहेलना न करें, बल्कि अभ्यास को ही अपने जीवन का आधार बनाकर अत्यंत आदर और प्रेमपूर्वक उसे सांगोपांग करता रहे। इस प्रकार किया हुआ अभ्यास दृढ़ होता है। इस सूत्र का भाव गीता में इस प्रकार आया है—‘स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा’ (गीता 6/23) अर्थात् उस योग का अभ्यास बिना उकताये हुए चित्त से निष्ठापूर्वक करते रहना चाहिए।

मनुष्य साधना तभी कर सकता है, जब शरीर स्वस्थ हो। मनुष्य के शरीर में एक प्रकार से विद्युत प्रवाह चलता रहता है। जब इस प्रवाह में किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न होता है, तो मनुष्य साधना नहीं कर सकता है। इसी विद्युत प्रवाह को एकतत्त्व के अभ्यास के द्वारा सही किया जा सकता है तथा शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि—‘तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।’ (पातंजलयोगसूत्र 1/11) अर्थात् साधना के मार्ग में आये विघ्नों को दूर करने के लिए एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए। उस एकतत्त्व के अभ्यास के लिए एक ही तत्त्व ‘ॐ’ का उच्चारण करना चाहिए। ‘ॐ’ के उच्चारण से चित्त शान्त होता है। प्रणव (ॐकार) का उच्चारण एक तत्त्व के अभ्यास के लिए महर्षि पतंजलि प्रणव का उच्चारण बताते हुए कहते हैं—‘तस्य वाचकः प्रणवः।’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/27) अर्थात् उस ईश्वर को ॐ नाम से जाना जाता है। महर्षि पतंजलि ने इस सूत्र में ॐ ईश्वर व एकतत्त्व का नाम बताया है। उस एकतत्त्व या ईश्वर के वाचक ॐ के उच्चारण से साधना की सिद्धि होती है। इस ॐ में उतने ही रहस्य हैं, जितने प्रभु के नाम में हैं। जिसने ॐ को जान लिया, समझना चाहिए उसने प्रभु को पहचान लिया। वेद, पुराण, उपनिषद् सभी में ॐ की महिमा का वर्णन किया है। अतः ॐ के उच्चारण का अभ्यास करके चित्त की वृत्तियों को शान्त किया जा सकता है।

महर्षि पतंजलि ने कहा है कि—‘मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्’ अर्थात् कहने का आशय यह है कि सुखी मनुष्यों में मित्रता की भावना करने से, दुःखी मनुष्यों में दया की भावना करने से, पुण्यात्मा पुरुषों में प्रसन्नता की भावना करने से और पापियों में उपेक्षा की भावना करने से चित्त के राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलों का नाश होकर चित्त शुद्ध निर्मल हो जाता है। अतः साधक को इसका अभ्यास करना चाहिए।

महर्षि पतंजलि ने चित्त को वृत्तियों से रहित करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास बताया है—‘प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/34) अर्थात् प्राण को बारम्बार बाहर निकालने तथा बाहर रोकने के प्रयास से भी चित्त निर्मल होता है। इस सूत्र में प्राणायाम की प्रक्रिया मुख्यतः रेचक, कुम्भक (बाह्य कुम्भक) का वर्णन किया गया है। प्रच्छर्दन से तात्पर्य अन्दर स्थित वायु को प्रयत्न पूर्वक नासारन्ध्रों से बाहर छोड़ने की क्रिया से है तथा छोड़ी गयी वायु को वहीं रोके रखने की प्रक्रिया को विधारणा कहते हैं। अतः प्रच्छर्दन और विधारण क्रिया द्वारा प्राण का नियमन करने से चित्त शुद्ध होता है।

महर्षि पतंजलि ने प्रसंग वश चित्त की निर्मलता की उपाय बतलाकर मन को स्थिर करने वाले अभ्यास रूपी अन्य साधन को बताते हुए कहा है कि—**‘विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी’** अर्थात् कहने का आशय यह है कि अभ्यास करते-करते साधक को दिव्य विषयों का साक्षात् हो जाता है, उन दिव्य विषयों का अनुभव करने वाली वृत्ति का नाम विषयवती प्रवृत्ति है (योगसूत्र, 3/36)। ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होने से साधक का योग मार्ग में विश्वास और उत्साह बढ़ जाता है, इस कारण यह आत्म चिंतन के अभ्यास में भी मन को स्थिर करने में हेतु बन जाती है। इसी प्रकार का और भी उपाय को बतलाते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि—**‘विशोका वा ज्योतिष्मती’** (पातंजलयोगसूत्र, 1/36) अर्थात् अभ्यास करते-करते साधक को यदि शोक रहित प्रकाश मय प्रवृत्ति का अनुभव हो जाये तो वह भी मन की स्थिर करने वाली होती है।

महर्षि पतंजलि ने चित्त को शुद्ध करने के लिए अभ्यास के साधन के रूप में वीतराग पुरुष के ध्यान को बताते हुए कहा है कि—**‘वीतराग विषय वा चित्तम्।’** (पातंजलयोगसूत्र, 1/37) अर्थात् वीतराग को विषय करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है। कहने का आशय यह है कि जिस पुरुष के राग द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं ऐसे विरक्त पुरुष को ध्येय बनाकर अभ्यास करने वाला अर्थात् उसके विरक्त भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है। यहाँ विरक्त पुरुष से अभिप्राय वह पुरुष जिसके सभी राग, आसक्तियाँ, आकांक्षाएँ शान्त हो चुकी हों, जो पुरुष इनसे परे आ चुका हो, ऐसे पुरुष स्वयं महर्षि पतंजलि भी हैं। साथ ही उनकी परम्परा में अनेक ऋषि महर्षि बुद्ध पुरुष हैं, जिन्होंने इस धरा को पावन किया है। इन ऋषियों में कुछ प्राचीन ऋषिगण हैं तथा कुछ अवतार हुए हैं जैसे प्रभु श्री राम, भगवान श्री कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि सन्त आत्माएँ हैं। आधुनिक युग के सिद्ध पुरुषों में श्री रामकृष्ण परमहंस, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण, स्वामी विवेकानन्द आदि हैं। इन सभी ने इस युग को अपनी तपस्या से, साधना से प्रकाशित किया, ये सभी वीतरागी पुरुष हैं। वीतराग पुरुष का ध्यान करने से मनः स्थिति उन्हीं की तरह होने लगती है। इस तरह वीतराग पुरुष का ध्यान करने से चित्त निर्मल होता है, स्थिर होता है, जो कि चित्त वृत्तियों के निरोध में सहायक है।

महर्षि पतंजलि ने और भी अन्य उपायों को बतलाते हुए कहा है कि—**‘स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा’** (पातंजलयोगसूत्र, 1/38) अर्थात् स्वप्न में कोई अलौकिक अनुभव हुआ हो, जैसे अपने इष्टदेव का दर्शन आदि तो उसको स्मरण करके वैसा ही चिन्तन करने से मन स्थिर हो जाता है तथा गाढ़ निद्रा में केवल चित्त की वृत्तियों के अभाव का ही ज्ञान रहता है, किसी भी पदार्थ की प्रतीति नहीं होती है, उसी प्रकार समस्त वृत्तियों के अभाव के ज्ञान का आलम्बन करने से अर्थात् उसी को लक्ष्य बनाकर अभ्यास करने से भी अनायास ही चित्त स्थिर हो जाता है। जिस काल में तमोगुण का आविर्भाव होता है, उस समय अभ्यास नहीं करना चाहिए। जिस समय चित्त और इन्द्रियों में सत्त्वगुण बढ़ा हो उस समय यह साधन अधिक लाभप्रद हो सकता है।

मनुष्यों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है इसलिए महर्षि पतंजलि ने सर्वसाधारण के लिए उपयोगी साधन का वर्णन करते हुए कहा है कि—**‘यथाभिमतध्यानाद्वा’** (पातंजलयोगसूत्र, 1/39) अर्थात् कहने का आशय यह है कि पूर्व में कहे गये साधनों में से यदि कोई साधन किसी साधक के अनुकूल नहीं पड़ता हो तो उसे अपनी रुचि के अनुसार अपने इष्ट का ध्यान करना चाहिए। अपनी रुचि के अनुसार अपने इष्ट का ध्यान करने से

मन स्थिर हो जाता है। महर्षि पतंजलि ने अभ्यास के साधन एक तत्व का अभ्यास ऊँ का उच्चारण आदि बताया है। परन्तु इस ओऊँम् के उच्चारण के लिए किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठना आवश्यक है। क्योंकि चित्त की वृत्तियों को रोकने के लिए सर्वप्रथम शरीर को स्थिर करना आवश्यक है। यदि शरीर को अधिक समय तक स्थिर अवस्था में, बिना हिलाये-डुलाये, मूर्ति के समान स्थिर रखा जाए तो विचारों का प्रवाह रुक जाता है। चित्त की वृत्तियों को रोकने के लिए आसन का अभ्यास जरूरी है। महर्षि पतंजलि ने आसन को परिभाषित करते हुए कहा है कि—‘स्थिरसुखमासनम्।’ (पातंजलयोगसूत्र, 2/46) अर्थात् स्थिर व सुखपूर्वक जिसमें बैठा जा सके वह ‘आसन’ है। परन्तु चित्त वृत्ति निरोध के लिए ध्यानात्मक आसन में बैठना उचित है। क्योंकि वृत्तियों के निरोध के लिए आसन में दीर्घ काल तक स्थिर रह कर अभ्यास की आवश्यकता है। यदि आसन पर स्थिरता का अभ्यास ना हो तो साधना में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। अतः जैसे-जैसे स्थिरता आती है, वैसे-वैसे वृत्तियाँ शान्त होने लगती हैं। चित्त शान्त होने लगता है।

4.2.2 वैराग्य

अभ्यास की पूर्णता के लिए वैराग्य साधना की अति आवश्यकता होती है। वैराग्य अर्थात् बिना राग के अर्थात् यदि साधक साधना में सफलता चाहता है तो सांसारिक माया, मोह, आसक्ति उसकी साधना में बाधक बनते हैं। जब तक आसक्ति रहेगी साधना सफल नहीं हो सकती है। आत्मिक जागृति एवं आध्यात्मिक उपलब्धि की प्राप्ति का एक ही सशक्त उपाय है वैराग्य।

वैराग्य अर्थात् बिना राग। वैराग्य का जन्म विवेक के द्वारा होता है। विवेक का अर्थ उचित-अनुचित का ज्ञान, सही-गलत की समझ, अविनाशी तत्व व नाशवान का बोध, असत्य और सत्य की पहचान है। जिसे इसका ज्ञान हो जाये, विवेक ज्ञान प्राप्त हो जाए, उसी साधक का वैराग्य सधता है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है—

‘ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥’

(गीता 5/22)

अर्थात् इन्द्रियों के स्पर्श से अनुभव होने वाले जो भी भोग हैं, वे सभी दुःख देने वाले हैं। ये सभी आदि अन्तः वाले हैं, नाशवान हैं। इसलिए विवेकवान पुरुष इनमें नहीं रमते हैं। अर्थात् जो विवेकवान पुरुष हैं, वही विषय भोगों से दूर रहेंगे। इस प्रकार वैराग्य का उदय विवेकज्ञान से होता है। क्योंकि भोग यदि लौकिक हो अथवा अलौकिक सभी निरर्थक है। अर्थ यदि है तो केवल आत्मतत्त्व का है। इस आत्मतत्त्व साधना के लिए अभ्यास व वैराग्य का होना आवश्यक है। अतः वैराग्य के लिए सांसारिक दुःखों का बारम्बार चिन्तन कर वैराग्य साधा जा सकता है। जैसे गौतम बुद्ध ने सभी राजसी सुखों को त्याग कर यही निष्कर्ष निकाला कि ‘सब्बं दुक्खम्’—यह सब दुःख ही हैं। वैराग्य की सच्ची साधना यही है।

महर्षि पतंजलि ने वैराग्य का लक्षण करते हुए कहा है कि—‘दृष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञावैराग्यम्’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/15) अर्थात् देखे हुए तथा सुने हुए विषयों में जो पूर्ण रूपेण तृष्णा रहित चित्त की वशीकार नामक संज्ञा ही वैराग्य है। महर्षि पतंजलि ने विषय को दो श्रेणियों में विभाजित किया है 1. दृष्ट 2. आनुश्रविक। दृष्ट विषय उन्हें कहते हैं जो इस जगत में हम स्वयं देखते हैं, या

दिखाई देते हैं जैसे—धन सम्पदा, ऐश्वर्य, रूप, रस, गन्ध आदि। आनुश्रविक विषय उन्हें कहते हैं, जो महापुरुषों व पुराण, उपनिषद शास्त्रों द्वारा सुने गये हैं जैसे—स्वर्गलोक दिव्यलोक की प्राप्ति आदि। इस प्रकार वह स्थिति जिसमें मनुष्य को सुने गये तथा देखे गये विषयों के प्रति कोई भी आसक्ति नहीं रहती है। इस स्थिति में दोनों विषयों के प्रति कोई भी विकार चित्त में नहीं रहता है।

अपर वैराग्य—

अन्तःकरण और इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाले इस लोक के समस्त भोगों का समाहार यहाँ 'दृष्ट' शब्द में किया गया है और जो प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं है, जिनकी बड़ाई वेद, शास्त्र और भोगों का अनुभव करने वाले पुरुषों से सुनी गयी है, ऐसे भोग्य विषयों का समाहार 'आनुश्रविक' शब्द में किया गया है। उपर्युक्त दोनों प्रकार के भोगों से जब चित्त भलीभाँति तृष्णारहित हो जाता है, ऐसे कामनारहित चित्त की जो वशीकार नामक अवस्था विशेष है, वह अपर वैराग्य है।

पर वैराग्य—

पर वैराग्य का वर्णन महर्षि पतंजलि ने इस प्रकार किया है—'तत्परंपुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्णयम्।' (पातंजलयोगसूत्र, 1/16) अर्थात् पुरुष के ज्ञान होने पर अर्थात् आत्मज्ञान होने पर प्रकृति के गुणों में तृष्णा का सर्वथा अभाव हो जाना 'परम वैराग्य' है। जिससे प्रकृति के गुणों में तृष्णा का अभाव हो जाता है जिसे पर वैराग्य कहा जाता है। वैराग्य की यह अवस्था अति दुर्लभ अन्तः चेतना के परमात्मा में विलीन हो जाने पर यह अवस्था स्वयं ही प्रकट हो जाती है, जिसे पर वैराग्य कहते हैं। अन्तर्चेतना प्रभु में जब विलीन हो जाती है, तो विषय भोगों के प्रति कोई भी रुचि नहीं रह जाती है, आसक्ति नहीं रह जाती है। यही पर वैराग्य है। यह अवस्था कैसे प्राप्त हो या इस परम सिद्धि का भाव चेतना में कैसे अवतरण हो? इस प्रकार के प्रश्न आपके मन में उठ रहे होंगे। आपकी जिज्ञासाओं का एक ही उत्तर है, प्रभु में प्रीति। जिन साधकों की ईश्वर के प्रति प्रीति है उनके चरणों में अनुरक्ति है, उन्हें वैराग्य की सिद्धि अपने आप ही मिल जाती है। भक्ति मार्ग से वैराग्य की सिद्धि सहज ही हो जाती है।

4.3 अभ्यास और वैराग्य की साधना में बाधक तत्त्व

अभ्यास व वैराग्य की साधना काल में साधक के सामने नौ प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं। इन विघ्नों से साधना में बाधा उत्पन्न होती है। इसलिए इन्हें बाधक तत्त्व कहा जाता है। ये चित्त को विक्षेपित करते हैं, जिससे चित्त चंचल हो जाता है, तथा योग साधना में अन्तराय आते हैं। जिससे इन्हें योगान्तराय कहते हैं। "व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।"

4.3.1 नौ विघ्न

1. व्याधि—शरीर व मन में किसी रोग का होना व्याधि है।
2. स्त्यान—अकर्मण्यता अर्थात् काम ना करने की प्रवृत्ति।
3. संशय—स्वयं की क्षमता व साधना के परिणाम पर संदेह करना।
4. प्रमाद—योग साधना की अवहेलना करना प्रमाद है।

5. **आलस्य**—तमोगुण की अधिकता से शरीर में भारीपन।
6. **अविरति**—संसार के विषयों के प्रति आकर्षित होना तथा वैराग्य का अभाव।
7. **भ्रान्तिदर्शन**—मिथ्याज्ञान, योग साधना के प्रति भ्रामक ज्ञान, भ्रान्तिदर्शन है।
8. **अलब्ध भूमिकत्व**—साधना करने पर भी लक्ष्य प्राप्त न होना। जिससे साधना के प्रति उत्साह की कमी, अलब्ध भूमिकत्व है।
9. **अनवस्थितत्व**—साधना में चित्त की विशेष स्थिति प्राप्त हो जाने पर भी उसमें स्थिर ना हो पाना, अनवस्थितत्व है।

यह सभी विघ्न योग साधना में बाधक हैं। महर्षि पतंजलि चेतावनी देते हुए स्पष्ट करते हैं कि इन विघ्नों का क्रम यहीं समाप्त नहीं होता है।

4.3.2 पाँच उपविघ्न

इन नौ विघ्नों के साथ-साथ पाँच उपविघ्न भी हैं। जो साधक की साधना में बाधा उत्पन्न करते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार से है—‘**दुःखदोर्मनस्यङ्गमेजयत्व श्वासप्रश्वास विक्षेपसहभुवः।**’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/31) अर्थात् दुःख, दोर्मन्य, अंग मेजयत्व, श्वास प्रश्वास ये पाँच विक्षेपो के साथ-साथ होने वाले विघ्न हैं।

1. **दुःख**—दुःख के तीन भेद हैं। आध्यात्मिक, आदिभौतिक व आदिदैविक। काम—क्रोध, राग—द्वेष, आदि विकारों के कारण शरीर तथा मन की पीड़ा आध्यात्मिक दुःख है। मनुष्य तथा अन्य जीवों शेर, सर्प, मच्छर आदि के द्वारा होने वाले कष्ट को आदि भौतिक दुःख कहते हैं। अति वृष्टि (वर्षा), आँधी, विजली, सर्दी—गर्मी, भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा होने वाली पीड़ा आदि दैविक दुःख है।
2. **दोर्मन्यस्य**—मन की इच्छा के पूर्ण ना होने पर मन में उत्पन्न क्षोभ दोर्मनस्य है।
3. **अंगमेजयत्व**—शरीर के अंगों का कम्पित होना अंगमेजयत्व है।
4. **श्वास**—वाह्य कुम्भक में कठिनाई अर्थात् बिना इच्छा के बाहर की वायु का भीतर प्रवेश हो जाना ही श्वास नामक विघ्न है।
5. **प्रश्वास**—न चाहने पर अन्दर की श्वास का बाहर निकल जाना अर्थात् अन्तः कुम्भक में कठिनाई प्रश्वास नामक विघ्न है। ये सभी विघ्न, उपविघ्न साधक की साधना के विघ्न हैं।

बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।
 - I. वृत्ति निरोध के उपाय कितने हैं। (पाँच/दो)
 - II. चित्त की वृत्तियों को रोकने का प्रथम साधन क्या है। (अभ्यास/वैराग्य)
 - III. चित्त की स्थिरता के लिए किये जाने वाला प्रयत्न क्या है। (अभ्यास/वैराग्य)
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
 - I. देखें गये अथवा सुने गये विषयों के प्रति तृष्णा का अभाव..... है। (अभ्यास/वैराग्य)
 - II. वैराग्य के.....प्रकार हैं। (दो/चार)

बोध प्रश्न-2

1. अभ्यास और वैराग्य की साधना में बाधक तत्त्वों को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. वैराग्य को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

वृत्ति निरोध के उपायों को स्पष्ट कीजिए।

4.4 सारांश

महर्षि पतंजलि ने जीवन के लक्ष्यों को पूर्ण करने के लिए अभ्यास पर बल दिया है, पर ममुक्षु साधक के लिए अभ्यास व वैराग्य की साधना बतायी है। जिससे जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। महर्षि पतंजलि ने चित्त वृत्ति निरोध के लिए अभ्यास और वैराग्य की साधनाई बताई हैं। 'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।' (पातंजलयोगसूत्र 1/12) अर्थात् अभ्यास और वैराग्य द्वारा उन चित्त वृत्तियों का निरोध होता है। इस प्रकार **इकाई-04 वृत्ति निरोध के उपाय** के अन्तर्गत अभ्यास एवं वैराग्य का अध्ययन किया गया।

4.5 शब्दावली

वृत्ति	—	गोल गोल घूमना, वर्ताव करना
अभ्यास	—	किसी कार्य को बार — बार करना
वैराग्य	—	बिना राग के
अविनाशी	—	नाश ना होने वाला
सुविज्ञ	—	अतिश्य, चतुर
सुजान	—	चतुर निपुण
जड़मति	—	मूर्ख

4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातञ्जल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातञ्जल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. (i) दो (ii) अभ्यास (iii) अभ्यास
2. (i) वैराग्य (ii) दो (iii) अपर

बोध प्रश्न-2

1. अभ्यास व वैराग्य की साधना काल में साधक के सामने नौ प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं। इन विघ्नों से साधना में बाधा उत्पन्न होती है। इसलिए इन्हें बाधक तत्व कहा जाता है। ये चित्त को विक्षेपित करते हैं, जिससे चित्त चंचल हो जाता है, तथा योग साधना में अन्तराय आते हैं। जिससे इन्हें योगान्तराय कहते हैं। **“व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।”**

नौ विघ्न-

व्याधि-शरीर व मन में किसी रोग का होना व्याधि है।

स्त्यान-अकर्मण्यता अर्थात् काम ना करने की प्रवृत्ति।

संशय-स्वयं की क्षमता व साधना के परिणाम पर संदेह करना।

प्रमाद-योग साधना की अवहेलना करना प्रमाद है।

आलस्य-तमोगुण की अधिकता से शरीर में भारीपन।

अविरति-संसार के विषयों के प्रति आकर्षित होना तथा वैराग्य का अभाव।

भ्रान्तिदर्शन-मिथ्याज्ञान, योग साधना के प्रति भ्रामक ज्ञान, भ्रान्तिदर्शन है।

अलब्ध भूमिकत्व-साधना करने पर भी लक्ष्य प्राप्त न होना। जिससे साधना के प्रति उत्साह की कमी, अलब्ध भूमिकत्व है।

अनवस्थितत्व-साधना में चित्त की विशेष स्थिति प्राप्त हो जाने पर भी उसमें

स्थिर ना हो पाना, अनवस्थितत्व है।

यह सभी विघ्न योग साधना में बाधक हैं। महर्षि पतंजलि चेतावनी देते हुए स्पष्ट करते हैं कि इन विघ्नों का क्रम यहीं समाप्त नहीं होता है।

पाँच उपविघ्न—इन नौ विघ्नों के साथ-साथ पाँच उपविघ्न भी हैं। जो साधक की साधना में बाधा उत्पन्न करते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार से है—‘**दुःखदोर्मनस्यङ्गमेजयत्व श्वासप्रश्वास विक्षेपसहभुवः।**’ (पातंजलयोगसूत्र, 1/31) अर्थात् दुःख, दौर्मन्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास ये पाँच विक्षेपो के साथ-साथ होने वाले विघ्न हैं।

दुःख—दुःख के तीन भेद हैं। आध्यात्मिक, आदिभौतिक व आदिदैविक। काम—क्रोध, राग—द्वेष, आदि विकारों के कारण शरीर तथा मन की पीड़ा आध्यात्मिक दुःख है। मनुष्य तथा अन्य जीवों शेर, सर्प, मच्छर आदि के द्वारा होने वाले कष्ट को आदि भौतिक दुःख कहते हैं। अति वृष्टि (वर्षा), आँधी, विजली, सर्दी—गर्मी, भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा होने वाली पीड़ा आदि दैविक दुःख हैं।

दौर्मनस्य—मन की इच्छा के पूर्ण ना होने पर मन में उत्पन्न क्षोभ दौर्मनस्य है।

अंगमेजयत्व—शरीर के अंगों का कम्पित होना अंगमेजयत्व है।

श्वास—वाह्य कुम्भक में कठिनाई अर्थात् बिना इच्छा के बाहर की वायु का भीतर प्रवेश हो जाना ही श्वास नामक विघ्न है।

प्रश्वास—न चाहने पर अन्दर की श्वास का बाहर निकल जाना अर्थात् अन्तः कुम्भक में कठिनाई प्रश्वास नामक विघ्न है। ये सभी विघ्न, उपविघ्न साधक की साधना के विघ्न हैं।

अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 समाधिपाद में वर्णित असम्प्रज्ञात एवं सम्प्रज्ञात समाधि का विवेचन

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 उद्देश्य
- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 योगदर्शन में समाधि
 - 5.2.1 योग पद का अर्थ
 - 5.2.2 समाधि की अन्य परिभाषायें
- 5.3 समाधि के भेद
 - 5.3.1 असम्प्रज्ञात समाधि
 - 5.3.2 सम्प्रज्ञात समाधि
- 5.4 असम्प्रज्ञात समाधि के भेद
 - 5.4.1 भव प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि
 - 5.4.2 उपाय प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि
- 5.5 सम्प्रज्ञात समाधि के भेद
 - 5.5.1 वितर्कानुगत या सवितर्क समाधि
 - 5.5.2 विचारानुगत या सविचार समाधि
 - 5.5.3 आनन्दानुगत या सानन्द समाधि
 - 5.5.4 अस्मितानुगत या सास्मित समाधि
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 5.9 बोध अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- पातञ्जल योग दर्शन में समाधि के विस्तृत विवेचन से परिचित होंगे।
- समाधि के भेदों असम्प्रज्ञात समाधि और सम्प्रज्ञात समाधि से अवगत होंगे।
- सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि के भेदों को विस्तार से जान पायेंगे।

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा दर्शनशास्त्र है। दर्शन का अर्थ ही है "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" अर्थात् जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार किया जाये अर्थात् परमतत्त्व को जाना जाये, उसे दर्शन कहते हैं। दर्शनशास्त्र की परम्परा में दो प्रकार के सम्प्रदाय प्रचलित हैं—आस्तिक दर्शन एवं नास्तिक दर्शन। आस्तिक दर्शन संख्या में 6 माने जाते हैं—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त; जबकि

नास्तिक दर्शन संख्या में 3 माने जाते हैं—चार्वाक, जैन एवं बौद्ध। ये सभी दार्शनिक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में कैवल्य या मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति के लिए योग एवं समाधि के महत्त्व को स्वीकार करते हैं, जिनका वर्णन आचार्य पतञ्जलि द्वारा प्रणीत योगदर्शन में किया गया है। योगदर्शन के प्रणेता आचार्य पतञ्जलि माने जाते हैं। इस दर्शन में अष्टाङ्ग योग का वर्णन करते हुए योग के 8 अङ्गों के विषय में बतलाया गया है, वे हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि। इनमें से अंतिम मुख्य अङ्ग समाधि अन्य सभी अङ्गों का उपकारक होने के साथ-साथ योग का मुख्य फल भी माना जाता है। अतः योगदर्शन के समाधिपाद में वर्णित असम्प्रज्ञात समाधि एवं सम्प्रज्ञात समाधि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसकी प्राप्ति के बाद आत्मा का परमात्मा से योग या मिलन अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यही कारण है कि इस दर्शन का नाम योग अन्वर्थ या सार्थक है। मोक्ष या कैवल्य या निर्वाण आदि जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के क्रम में समाधि की चर्चा किसी न किसी रूप में सभी ग्रन्थों में की गई है।

5.2 योगदर्शन में समाधि

वेद ज्ञानराशि के भण्डार माने जाते हैं। इस वैदिक साहित्य में योगदर्शन के सिद्धान्त भी यत्र-तत्र बिखरे हुए प्राप्त होते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने सर्वप्रथम भिन्न-भिन्न स्थलों पर विकीर्ण उन सभी योगदर्शन सम्बन्धी सिद्धान्तों को संकलित कर, एक व्यवस्थित योगशास्त्र की रचना की। इतना ही नहीं, उपनिषद्, महाभारत, बौद्ध, जैन आदि सभी आध्यात्मिक ग्रन्थों में मोक्ष की प्राप्ति के लिए योग की साधना को आवश्यक माना है।

5.2.1 योग पद का अर्थ

योग पद 'युज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। 'युज्' धातु के अनेक अर्थ हैं जिनके अनुसार योग पद के भिन्न-2 अर्थ हो जाते हैं, यथा—

1. 'युज् समाधौ' के अनुसार = योग का अर्थ है— समाधि
2. 'युजिर् योगे' = योग का अर्थ है— जोड़ या मिलना
3. 'युज् संयमने' = योग का अर्थ है— संयमन

इस प्रकार योग पद का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है, जैसे संयोजित करने के अर्थ में, परमात्मा से जीवात्मा के मिलन के अर्थ में आदि। भगवद्गीता में योग पद का अर्थ 'कर्म में कुशलता प्राप्त करना' (योगः कर्मसु कौशलम्), 'समत्वभाव' (समत्वं योगः उच्यते), 'ब्रह्मभाव' आदि के रूप में भी माना गया है। योगदर्शन में आचार्य पतञ्जलि ने योग का अभीष्ट अर्थ 'समाधि' अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध के रूप में स्वीकार किया है—“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”। (योगसूत्र 1.2)

चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए, साधना-पद्धति में आठ अंग हैं — 'यम', 'नियम', 'आसन', 'प्राणायाम', 'प्रत्याहार', 'धारणा', 'ध्यान' एवं 'समाधि'। इन आठ अङ्गों में से योगसाधना में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान समाधि का है, क्योंकि इसके अनन्तर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा आत्मा का परमात्मा से मिलन संभव हो पाता है।

5.2.2 समाधि की अन्य परिभाषायें

'समाधि' शब्द 'सम्' और 'आ' उपसर्गपूर्वक 'धा' धातु से 'कि' प्रत्यय करने पर बना है जिसका अर्थ होता है— 'एकाग्र करना', 'एकनिष्ठता', 'ध्यान की पराकाष्ठा', 'योग की

अंतिम अवस्था', 'आत्मसाक्षात्कार की स्थिति', 'जीवात्मा-परमात्मा के मिलन की अवस्था' आदि। इस प्रकार समाधि का अर्थ है-ध्येय वस्तु में चित्त की विक्षेप रहित एकाग्रता। योगदर्शन के अनुसार "समाधीयते चित्तमन्नेन इति समाधिः" अर्थात् समस्त वृत्तियों के निरोध होने पर चित्त की स्थिर और उत्कृष्ट अवस्था का नाम समाधि है। समाधि के विषय में विष्णु-पुराण में कहा गया है कि -

"तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत्।

मनसा ध्यानं निष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते॥"

(विष्णु पुराण 6.7.92)

अर्थात् ध्यान के द्वारा कल्पना से हीन स्वरूप को ग्रहण करना तथा मन के द्वारा ध्यान की चरम अवस्था को प्राप्त होना ही समाधि है। समाधि के विषय में महर्षि दयानन्द का कहना है कि जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है, उसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होकर, अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जानकर, आत्मा के परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण होने को समाधि कहते हैं। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका) उपनिषदों में समाधि को आत्मा एवं परमात्मा के मिलन की अवस्था कहा गया है। यथा जाबालदर्शनोपनिषद् के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा के ज्ञान के उदय को समाधि कहते हैं। (जाबालोपनिषद् 10.1) ब्रह्मसूत्र भाष्यकार शंकराचार्य के अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है तथा दोनों ही अद्वैत हैं। इस आत्मस्वरूप का बोध समाधि की अवस्था में ही होता है। विवेकचूडामणि में शंकराचार्य कहते हैं -

"समाधिनानेन समस्तवासना ग्रन्थेर्विनाशोऽखिलकर्मनाशः।

अन्तर्बहिः सर्वत एव सर्वदा स्वरूप विस्फूर्तिरयत्नतः स्वयम्"॥

(विवेक चूडामणि 364)

अर्थात् समाधि से समस्त वासना रूप ग्रन्थि का विनाश और अखिल कर्मों का नाश होकर, अन्दर बाहर सब जगह एवं हमेशा बिना यत्न किये ही स्वरूप की विस्फूर्ति होने लगती है।

यह समाधि अष्टाङ्ग योग का अन्तिम चरण है। योग साधना का यह वह अंतिम पड़ाव है जिसकी प्राप्ति से साधक अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है। वस्तुतः समाधि की अवस्था में ही योग का प्रयोजन सिद्ध होता है। अतः समाधि को योग का पर्याय भी कहा जाता है। व्यास भाष्य में भी कहा गया है:-

"योगः समाधिः"। (योगभाष्य 1.1) अर्थात् योग ही समाधि है। साधक का लक्ष्य है-मोक्ष या मुक्ति प्राप्त करना। इस लक्ष्य पर साधक अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेता है। समाधि उपलब्ध हो जाने पर साधक अपने को प्रकृति से भिन्न समझता है। वह मन, बुद्धि, शरीर और इन्द्रियों से ऊपर उठ जाता है। यही जीवन का सार है, इसके बाद उसके लिए कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता है। समाधि की अवस्था में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है-.

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"। (योगसूत्र 3.3) अर्थात् इस अवस्था में बाह्य जगत् के साथ जीव का सम्बन्ध टूट जाता है और वह अपने स्वरूप नित्य पद को प्राप्त कर लेता है अर्थात् जब (ध्यान) में मात्र ध्येय (लक्ष्य) की ही प्राप्ति होती है, तथा चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वही (ध्यान) समाधि हो जाता है। यदि देखा जाए तो ध्यान और समाधि में इतना ही अन्तर है कि ध्यान में तो ध्यान

करने वाला, जिस मन से ध्यान करता है और जिस विषय का ध्यान करता है, वहाँ तीनों वर्तमान रहते हैं, लेकिन समाधि में इनका भेद समाप्त हो जाता है। समाधि को एक दृष्टान्त के माध्यम से समझाते हुए कहा गया है कि जैसे मनुष्य जल में डुबकी लगाकर थोड़ा समय तक भीतर ही भीतर रुका रहता है वैसे ही साधक ईश्वर के आनन्द में मग्न होकर समाधि का आनन्द लेता है।

5.3 समाधि के दो भेद

पातञ्जल योगदर्शन में समाधि के मुख्य 2 प्रकार के भेद बतलाये गये हैं—‘असम्प्रज्ञात’ और ‘सम्प्रज्ञात समाधि’। पातञ्जलि के अनुसार योगदर्शन में इन दोनों समाधियों के कुछ उपभेद भी स्वीकार किये गये हैं जिनका विवरण आगे चलकर प्रसंगानुसार किया जायेगा। जहाँ एक ओर सम्प्रज्ञात समाधि में केवल अनर्थकारिणी वृत्तियों का ही निरोध होता है, वहाँ दूसरी ओर असम्प्रज्ञात समाधि में सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इस प्रकार ‘सम्प्रज्ञात समाधि’ को ‘सबीज समाधि’ एवं ‘असम्प्रज्ञात समाधि’ को ‘निर्बीज समाधि’ भी कहा जाता है।

5.3.1 असम्प्रज्ञात समाधि

आचार्य पातञ्जलि ने समाधिपाद में असम्प्रज्ञात समाधि के विषय में कहा है—

“विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः”। (योगसूत्र 1.18)

अर्थात् जिसमें चित्त की स्थिति मात्र संस्कार स्वरूप ही शेष बचती है, वह दूसरी अवस्था असम्प्रज्ञात समाधि है। यह ऐसी समाधि है जिसमें चित्त की सात्विक, राजस और तामस वृत्तियों का पूर्णतः निरोध हो जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि में कोई आलम्बन (ध्यान का विषय) शेष नहीं रहता। चित्त की ऐसी निरालम्ब अवस्था में केवल पूर्वज्ञान के संस्कार अवशिष्ट रहते हैं। व्यास भाष्य में इसे ‘निर्बीज समाधि’ कहा गया है, क्योंकि इस दशा में चित्त के समाहित होने के लिए किसी आलम्बन की अपेक्षा न रहने से बीजभूत अज्ञान भी नहीं रहता है।

यह समाधि की सर्वोच्च अवस्था है। इसमें पर वैराग्य अर्थात् प्रकृति-पुरुष के विवेकज्ञान द्वारा सात्विकवृत्ति के निरुद्ध हो जाने पर द्रष्टा की शुद्ध चेतन परमात्मस्वरूप में अवस्थिति होती है। इस समय चित्त में कोई वृत्ति नहीं रहती है, किन्तु वृत्तियों को हटाने वाला निरोध का परिणाम रहता है। आरम्भ में असम्प्रज्ञात समाधि क्षणिक होती है, किन्तु जैसे-जैसे निरोध के संस्कार व्युत्थान के संस्कारों को नष्ट करते जाते हैं, वैसे-वैसे इसकी अवस्था परिपक्व होती जाती है। अन्त में जब निरोध के संस्कार व्युत्थान के सारे संस्कारों को नष्ट कर देते हैं तब वे स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। इन संस्कारों के भी निरोध हो जाने पर संस्कार के बीज का सर्वथा अभाव हो जाने से यह ‘निर्बीज समाधि’ कहलाती है। योग साधना का लक्ष्य ‘असम्प्रज्ञात समाधि’ ही है, क्योंकि इसमें प्रारब्ध समाप्त होने पर देहपात के साथ ही कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

5.3.2 सम्प्रज्ञात समाधि

योगदर्शन के समाधिपाद में ‘सम्प्रज्ञात समाधि’ के विषय में कहा गया है—

“क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेरग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थितदञ्जनता समापत्तिः”।

(योगसूत्र 1.41)

अर्थात् जिसकी सभी बाह्य वृत्तियाँ क्षीणता को प्राप्त हो चुकी हैं, ऐसे उत्तम जाति वाले स्फटिक मणि के समान निर्मल चित्त का ग्रहीता (आत्मा-पुरुष, अस्मिता), ग्रहण (अन्तःकरण और इन्द्रियाँ), ग्राह्य (पंचभूत एवं सूक्ष्म तन्मात्र) में स्थित होना और तदाकार (उसी विषय के स्वरूप को प्राप्त) हो जाना ही 'सम्प्रज्ञात समाधि' कहलाता है।

इस समाधि में चित्त की राजस और तामस वृत्तियों का पूर्णरूप से निरोध होता है। इसमें केवल सात्विक वृत्तियाँ ही उदित रहती हैं। इस अवस्था में साधक को समग्र वस्तुओं का वास्तविक एवं निर्भ्रान्त ज्ञान होता है, इसलिए इस समाधि को 'सम्प्रज्ञात समाधि' कहते हैं— "सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन्निति सम्प्रज्ञातं समाधिः"।

यह ध्यान से समाधि तक पहुँचने की पहली अवस्था है। सम्प्रज्ञात समाधि के सिद्ध होने से प्रकृति और पुरुष—इन दो अन्तिम तत्त्वों का पृथक्-पृथक् ज्ञान भी हो जाता है, यही विवेकख्याति है। इस अवस्था में योगी की बुद्धि सत्यस्वरूप को ग्रहण करने के कारण संशय और भ्रम से मुक्त होकर शुद्ध हो जाती है। योगी की ऐसी शुद्ध बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है—

"ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" (योगसूत्र 1.48)

तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान होने के कारण इसे 'तत्त्वज्ञान' या 'सम्यग्ज्ञान' भी कहते हैं। विवेकख्याति का लाभ कराने के कारण इसे 'सम्प्रज्ञात योग' भी कहा जाता है। जब योगी की विवेकख्याति परिपक्व और दृढ हो जाती है तो निरन्तर बने रहने वाले विवेकख्याति से योगी को 'धर्ममेधसमाधि' की प्राप्ति होती है—

"प्रसंख्याने अपि अकुसीदस्य सर्वथा विवकेख्यातेः धर्ममेधः समाधिः"। (योगसूत्र 4.29)

इस प्रकार धर्ममेध समाधि के सिद्ध हो जाने से सभी प्रकार के क्लेश एवं कर्म संस्कार नष्ट हो जाते हैं—

"ततः क्लेश कर्मः निवृत्तिः"। (योगसूत्र 4.30)

धर्ममेधसमाधि जीवनमुक्ति की अवस्था है। पूर्ण कैवल्य की प्राप्ति असम्प्रज्ञात समाधि में होती है, जहाँ से फिर संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती—

"न च पुनरावर्तते"। (छान्दोग्योपनिषद् 8.15.1)

जब किसी ध्येय वस्तु पर चित्त केन्द्रीभूत होकर चिरकाल तक स्थिर रहता है, तब उसे 'एकाग्र' कहते हैं। प्रत्येक 'ध्याता' अर्थात् ध्यान करने वाला व्यक्ति, 'ध्येय' अर्थात् ध्यान की जाने वाली वस्तु और 'ध्यान' अर्थात् ध्यान की क्रिया—इन तीनों से युक्त होता है। प्रारम्भिक अवस्था में कोई भी ध्यान आलम्बन से शून्य नहीं हो सकता है। यह आलम्बन भी दीर्घकाल तक रहता है। हम अमुक ध्येय का ध्यान कर रहे हैं, विशिष्ट ज्ञान पूर्वक होने से इस समाधि को 'सम्प्रज्ञात समाधि' कहते हैं। इसे 'सबीज समाधि' भी कहते हैं क्योंकि इस दशा में चित्त के समाहित होने के लिए किसी आलम्बन की अपेक्षा रहने से, बीजभूत अज्ञान भी वर्तमान रहता है। प्रत्येक साधक को प्रारम्भ में इसी आलम्बन समाधि का आश्रय लेना पड़ता है ताकि वह बाद में निर्बीज समाधि तक पहुँच सके।

5.4 असम्प्रज्ञात समाधि के भेद

यह असम्प्रज्ञात समाधि भी दो प्रकार की होती है— भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय। इनमें से भव प्रत्यय विदेहों तथा प्रकृतिलीनों की होती है तथा उपाय प्रत्यय योगियों की होती है।

5.4.1 भव प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि

योगदर्शन के समाधिपाद में निर्बीज अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि के भेद 'भवप्रत्यय' के विषय में कहा गया है—

“भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्”। (योगसूत्र 1.19)

अर्थात् भवप्रत्यय नाम वाली असम्प्रज्ञात समाधि विदेहों तथा प्रकृतिलीनों की होती है।

तत्त्ववैशारदी के अनुसार 'भव' शब्द का अर्थ —'अविद्या' और 'प्रत्यय' का अर्थ—'कारण' माना गया है। (तत्त्ववैशारदी 1.19) अतः अविद्या जन्य वृत्तिनिरोध 'भवप्रत्यय' कहलाता है। यह भवप्रत्यय 'विदेह' (योगी जो पिछले जन्म में वितर्कानुगत और विचारानुगत समाधि सिद्ध कर चुके हैं और आनन्दानुगत समाधि का अभ्यास कर रहे हैं) एवं 'प्रकृतिलयों' (योगी जो पिछले जन्म में आनन्दानुगत समाधि को सिद्ध कर चुके हैं और अस्मितानुगत समाधि का अभ्यास कर रहे हैं) को होता है। विदेह एवं प्रकृतिलयों को विवेकख्याति प्राप्त नहीं हो पाती है, अतः इनकी समाधि सावधिक होती है और इस अवधि की समाप्ति के बाद ये पुनः जन्म—मरण का कष्ट भोगते हैं। इन्हें कैवल्य प्राप्त नहीं होता है। उससे पूर्व ही इनकी मृत्यु हो जाती है। ऐसे योगियों का जब पुनर्जन्म होता है तो पूर्वजन्म के योगाभ्यास विषयक संस्कारों के प्रभाव से वे अन्य साधन (उपाय) अपनाये बिना ही निर्बीज समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। उनकी निर्बीज समाधि उपाय—जन्य नहीं होती, अतः उसका नाम 'भव प्रत्यय' है। इस समाधि के सिद्ध होने में पुनः मनुष्य का जन्म प्राप्त होना ही कारण है, न कि साधनों का समुदाय।

5.4.2 उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि

भव प्रत्यय के बाद दूसरी है उपाय प्रत्यय। यह श्रद्धा वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञापूर्वक तथा बाद में विवेकख्याति में भी विरक्तता उत्पन्न होने पर आविर्भूत होती है। योगदर्शन के समाधिपाद में उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि के विषय में कहा गया है—

“श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्”। (योगसूत्र 1.20)

अर्थात् उपाय प्रत्यय समाधि श्रद्धा, वीर्य (उत्साह), स्मृति (ज्ञान के संस्कारों के जाग्रत होने), समाधि और प्रज्ञा पूर्वक क्रम से अन्य साधकों को प्राप्त होती है। इसके विषय में यह भी कहा जाता है कि उपायप्रत्ययो योगिनां भवति अर्थात् उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि, योगियों की होती है। इसी असम्प्रज्ञात समाधि से योगी जीवनमुक्त पद प्राप्त करता है। अविद्यारूपी कारणभूत आलम्बन समाप्त हो जाने से इसे निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

इस अवस्था में वृत्तियाँ पूर्णतः शान्त हो जाती हैं केवल उनका संस्कार शेष रह जाता है, जिनके निरोध हेतु बार—बार अभ्यास किया जाता है। जिस प्रकार अग्नि ईंधन को जलाकर स्वयं भी शान्त हो जाती है, उसी प्रकार असम्प्रज्ञात समाधि में ऋतम्भरा प्रज्ञा उदित होकर, अविद्या, वृत्ति एवं संस्कार को भस्म करके स्वयं भी शान्त हो जाती है।

उस समय विशुद्ध चैतन्य मात्र रहता है जो द्रष्टा पुरुष का स्वरूप है। यही पुरुष का कैवल्य या मोक्ष है जो योगसाधना का लक्ष्य है।

5.5 सम्प्रज्ञात समाधि के भेद

योगदर्शन में पतञ्जलि ने सम्प्रज्ञात समाधि के भेदों के विषय में कहा है—

“वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः”। (योगसूत्र 1.17)

अर्थात् वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता— इन चारों के सम्बन्ध से अर्थात् विषयभेद से युक्त जो समाधि है, वह सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि के 4 भेद हैं—वितर्क, विचार, आनन्द, अस्मिता। अब इन भेदों की चर्चा विस्तारपूर्वक करते हैं।

5.5.1 सवितर्क या वितर्कानुगत समाधि

सम्प्रज्ञात समाधि का पहला रूप ‘सवितर्क समाधि’ है। यह वह समाधि है, जहाँ योगी सच्चे ज्ञान और शब्दों पर आधारित ज्ञान के बीच भेद करने के योग्य नहीं होता है। साधक को प्रथमतः सवितर्क समाधि की ही उपलब्धि होती है। ‘वितर्क’ का अर्थ है—‘प्रश्न’ और ‘सवितर्क’ का अर्थ हुआ—‘प्रश्न के साथ’। यह समाधि बौद्धिक दृष्टिकोण पर आधारित होती है, इसमें तर्क करने का व्यापार बना रहता है। यह उच्चतर समाधि नहीं होती है। सवितर्क समाधि में साधक को सत्य का सही ज्ञान नहीं होता है क्योंकि सत्य को केवल केन्द्र पर पहुँचकर ही जाना जा सकता है और सवितर्क समाधि में साधक पूर्णतः केन्द्रित नहीं होता है। यद्यपि वह अपने लक्ष्य के समीप ही रहता है, किन्तु फिर भी वह अभी केन्द्र पर पहुँचा हुआ नहीं रहता है।

वस्तुतः चित्त में स्थूल विषय का अभोग ही ‘वितर्क’ कहलाता है—

“वितर्कश्चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोगः”। (व्यास—भाष्य 1.17) वितर्कानुगत समाधि पञ्च स्थूलमहाभूत या पंचभौतिक चतुर्भुजादि भगवत्प्रतिमा आदिरूप ग्राह्यविषयक समाधि है। ‘आभोग’ का अर्थ है—‘एक वस्तु का दूसरी में आरोप करने पर देशसम्बन्धिकता’। चित्त का विषय—सानिध्यकाल में तद्रूप होकर, उसका साक्षात्कार करना आभोग है। कहने का भाव है कि सवितर्क समाधि की इस अवस्था में किसी स्थूल विषय पर चित्त एकाग्र होता है, जैसे किसी देवता की मूर्ति पर ध्यान केन्द्रित होना। इस समाधि में साधक को अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, लेकिन सिद्धियों के मिल जाने से ही मुक्ति नहीं प्राप्त हो जाती, क्योंकि वे सिद्धियाँ तो योग के लिए साधनमात्र हैं। अपितु इनको प्राप्त करने से साधक भवसागर में और फँस जाता है जिस कारण वह अत्यन्त दुःख को प्राप्त करता है।

शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्प की दृष्टि से वितर्कानुगत समाधि के ‘सवितर्क’ एवं ‘निर्वर्तिका’ नामक दो भेद होते हैं। इनमें शब्द, अर्थ एवं ज्ञान से संकीर्ण समापत्ति ‘सवितर्क’ कहलाती है—

“तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः”। (योगसूत्र 1.42) इस समाधि में योगी के चित्त में ध्येय (स्थूल विषय) के स्वरूप के साथ—साथ उसके नाम और प्रतीति का भी अनुभव रहता है। अतः सवितर्क शब्द, अर्थ एवं उसके ज्ञान की स्मृति से युक्त होती है। अतः यह शब्द संकेत स्मरणवती होने से विकल्पात्मिका है। विकल्पमय ज्ञान वास्तविक नहीं होता है। ‘वितर्क’ शब्द का प्राचीन अर्थ ‘शब्दमयी चित्ता’ भी है। ‘वितर्क’

का विशेष अर्थ हुआ—‘विशेष तर्क’। अतः जिसमें वितर्क अथवा विशिष्टरूप से शब्दमय चित्ता हो, वह समाधि प्रज्ञापूर्ण स्थिति सवितर्का है। यथा— ‘घटः’ को ध्येय बनाने पर वर्णसमुच्चय रूप ‘घटः’ पद, कम्बुग्रीवादिमान् पदार्थविशेष रूप ‘घटः’ अर्थ एवं मानस बोध स्वरूप ‘घटः’ ज्ञान ये तीनों भिन्न-भिन्न होने पर भी सवितर्का में इनका आविभक्तरूप से ज्ञान होता है। इसलिए इसको सविकल्पक समाधि भी कहते हैं।

शब्दार्थज्ञान से शून्य अर्थमात्र को प्रकाशित करने वाली निर्वर्तिका समापत्ति कहलाती है—

“स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वर्तिका” (योगसूत्र 1.43)

इसमें शब्द, अर्थ और ज्ञान का विकल्प वर्तमान नहीं रहता। निर्वर्तिका में चित्त ध्येयभूत अर्थाकारमात्रवती प्रज्ञा से परिपूर्ण होता है। यह स्थिति शब्दसंकेत-स्मरण से शून्य तथा आगम, अनुमान-ज्ञानादि के विकल्प से रहित है, अतः इसे निर्विकल्पक भी कहते हैं, क्योंकि इसमें ग्राह्य विषय का वास्तविक स्वरूप स्फुटित होता है। इसमें ध्येय विषय के अप्रकाशनार्थ शब्दादि संकेतों का स्मरण अपेक्षित नहीं होता है। ध्येयाकारमात्र की भासिका होने से निर्वर्तिका समापत्ति में चित्त के अपने ग्रहण स्वरूप का भी भाव नहीं होता, अतः चित्त का स्वरूप न के बराबर हो जाता है। चित्त का ग्रहण स्वरूप ध्येय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसकी प्रतीति अलग से नहीं होती है।

5.5.2 सविचार या विचारानुगत समाधि

यह समाधि की वह अवस्था है जिसमें साधक निरन्तर अभ्यास के परिणामस्वरूप स्थूलविषय का परित्याग करके पंचतन्मात्र, बुद्धि, अहंकार आदि सूक्ष्म एवम् अतिसूक्ष्म विषयों पर ध्यान केन्द्रित करता है। जब स्थूल-विषयक समाधि पर अधिकार हो जाता है तब उसके अनुभव के साथ-साथ विचार-विशेष से अग्रिम भूमिका में सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान होता है। सूक्ष्म आलम्बन में चित्त का अभोग विचार का हेतु है। पंचतन्मात्रा आदि इसके सूक्ष्म विषय हैं।

विचार के लिए शाब्दिक सहायता अपेक्षित है। अतः प्रकृतिगत भेदानुसार यह भी ‘सविचारा’ एवं ‘निर्विचारा’ समापत्ति दो प्रकार की होती है। सविचारा समापत्ति में शब्द, अर्थ एवं ज्ञान का विधान रहता है, जबकि निर्विचारा में इनका विधान नहीं रहता —

“एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता”। (योगसूत्र 1.44)

समाधिप्रज्ञा की शुद्धि होने पर, निर्विचारा में केवल सूक्ष्म ध्येय अर्थ-मात्र का बोध रहता है। इन्हें ‘सवितर्का’ एवं ‘निर्वितर्का’ की भाँति समझना चाहिये। भेद केवल यह है कि ‘सवितर्का’, ‘निर्वितर्का’ स्थूल विषय वाली होती हैं, जबकि ‘सविचारा’ ‘निर्विचारा’ सूक्ष्म विषय वाली होती हैं। सूक्ष्म विषयों की चरमसीमा अव्यक्त प्रकृतिपर्यन्त है। इसी को अलिंग भी कहते हैं।

निर्विचारा समापत्ति में ही पूर्णतः शुद्ध तत्त्व का साक्षात्कार होता है क्योंकि शब्द पर आश्रित चित्ता पूर्णतः शुद्ध नहीं होती है। शब्दों के द्वारा सोचने से जो भ्रान्ति सम्भव है, वह शब्दहीन चित्ता (निर्विचारा समापत्ति) में असम्भव है। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है—

“अपरिमिततरं हि मनः परिमिततरं हि वाक्। तथा वाग्वैमनसो हसीयसी”। (शतपथ ब्राह्मण 9.44.7)

5.5.3 सानन्द या आनन्दानुगत समाधि

यह समाधि की वह अवस्था है जिसमें सूक्ष्म विषयों पर केन्द्रित चित्त में सत्त्वगुण की अधिकता के कारण विशेष आनन्द की उत्पत्ति होती है। कहने का अभिप्राय है कि सवितर्क और सविचार समाधियों के बाद के चरण में सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के भूतों का चिन्तन छोड़कर, अन्तःकरण को ध्यान का विषय बनाया जाता है। जब अन्तःकरण को रजोगुण और तमोगुण इन दोनों से रहित सोचा जाता है, तब उसे 'सानन्द समाधि' कहते हैं।

यह केवल सूक्ष्म ग्रहण विषयक समाधि है। इसमें ध्यान का विषय इन्द्रियाँ होती हैं। सात्विक अहंकार से जन्य होने के कारण इन्द्रियाँ आनन्दस्वरूप होती हैं। अतः इसके आलम्बन से सत्त्व की प्रकर्षता से अत्यन्त आनन्द की अनुभूति होती है। शरीर, चित्त, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय एवं प्राणों का वह अधिष्ठान स्वरूप है। अतएव यह आनन्द समस्त शरीर की सात्विक स्थिरता का स्वाभाविक बोध स्वरूप है। इन्द्रियसमूह के विषयों के व्यापार से, उनकी शान्ति ही अपेक्षाकृत परम आनन्द प्रदायिनी है, अर्थात् इन्द्रियाँ जब अपने विषयों के प्रति व्यापार से विमुख हो जाती हैं, तो वह अवस्था विषयों के प्रति इन्द्रियों की व्यापार वाली अवस्था से ज्यादा आनन्द प्रदायिनी होती है। अतः योगी इन्द्रियगण की शाश्वतिक शान्ति के लिए प्रयासरत रहता है। यह आनन्द अनुभव का ही विषय है। महाभारत के शान्ति पर्व में इन्द्रियों के पिण्डीवत् भाव की चर्चा की गई है। इन्द्रियों का पिण्डीवत् भाव होने से इन्द्रियगत आनन्द का भाव प्रकट होता है। उसमें समाधि होना आनन्दानुगत समाधि है।

योग-भाष्यकार ने आनन्दानुगत समाधि को 'विचार-विकल' कहा है, क्योंकि इस समाधि की अवस्था में स्थूलभूत से तन्मात्र तत्त्व में प्रविष्ट होने के लिए यत्नतः विचारपूर्वक ध्यान-जो आवश्यक माना जाता है, वह भी अनपेक्षित है। विचारानुगत सम्प्रज्ञात के सूक्ष्मभूत विषय, इस समाधि के विषय नहीं होते। अतः इसे विचार-विकल कहा गया है। (योगसूत्र-भाष्य 1.17)

5.5.4 सास्मित या अस्मितानुगत समाधि

यह समाधि की वह अवस्था है जिसमें साधक को केवल 'मैं हूँ' का ज्ञान रहता है। इसमें ध्यान का विषय 'अस्मिता' होती है, इसलिए एकाग्रता की सूक्ष्मता और सत्त्वगुण की बुद्धि के साथ-साथ अहंकार की आनन्दात्मिका वृत्ति के सूक्ष्म होने पर अस्मिता का साक्षात्कार होता है। चित्त प्रतिबिम्बवत् बुद्धि ही 'अस्मिता' है—

“दृक्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता”। (योगसूत्र 2.61)

इसको स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दृक् शक्ति पुरुष है और दर्शनशक्ति बुद्धि है। इन दोनों की एकात्मरूप वृत्ति 'अस्मिता' है। इसमें अहंकार भी सूक्ष्म रूप से रहता है। वस्तुतः इसमें प्रकृति, पुरुष, बुद्धि तथा अहंकार— इन चारों का संस्कार होता है। यह समाधि ग्रहीतृ-विषयक होती है किन्तु इसमें समाधि का आलम्बन स्वरूप द्रष्टा नहीं, अपितु विरूप द्रष्टा, व्यावहारिक पुरुष ही होता है।

इस अवस्था में जब स्वयं मन ध्यान का विषय होता है और ध्यान बिल्कुल परिपक्व और एकाग्र हो जाता है, तब स्थूल और सूक्ष्म-भूतों के सभी विचार त्याग दिये जाते हैं। फिर अन्य सब विषयों से पृथक् होकर अहंकार की केवल सत्यावस्था ही शेष रहती है, तब उसे 'अस्मिता समाधि' कहते हैं। जिस मनुष्य ने इस अवस्था को प्राप्त कर

लिया है, उसे वेदों में 'विदेह' कहा गया है। ऐसा व्यक्ति स्वयं स्थूल देह से रहित रूप में चिन्तन जारी रखता है। जो लोग इस अवस्था में रहते हुए, ध्येय की प्राप्ति किये बिना प्रकृति में लीन हो जाते हैं, उन्हें 'प्रकृतिलय' कहते हैं।

विषय भेद से समापत्ति ग्राह्य, ग्रहण, ग्रहीतृ भेद से तीन प्रकार की है। वितर्क, विचार, आनन्द एवं अस्मितानुगत समाधियों का विभाजन भी विषयगत ही है। उपर्युक्त चारों प्रकार की सम्प्रज्ञात समाधियों में प्रथम वितर्कानुगत समाधि में चारों (वितर्क, विचार, आनन्द, अस्मिता) समाविष्ट हैं। विचारानुगत में तीन (विचार, आनन्द, अस्मिता) हैं, आनन्दानुगत में दो (आनन्द, अस्मिता) हैं तथा अस्मितानुगत केवल अपने आप में अनुगत है। प्रकृति का कार्य बुद्धि, बुद्धि का अहंकार, अहंकार का इन्द्रियाँ एवं सूक्ष्म पंचभूत (पंचतन्मात्राएँ) एवं पंच सूक्ष्मभूतों का कार्य स्थूल पंचभूत होते हैं। अतः स्थूलभूत विषय वाली भावना वितर्क, विचार, आनन्द एवं अस्मिता चतुष्टयानुगत कही गयी है। सूक्ष्म पंचभूत विषयक विचारानुगत समाधि तृतीयानुगत है। यह केवल वितर्क से रहित है। अतः इस समापत्ति में पंचभूतों का अहसास नहीं होता है। ग्रहण-विषयक आनन्दानुगत समाधि विचार से भी विकल है। इसमें स्थूल-सूक्ष्म दोनों प्रकार के भूतों का अहसास नहीं होता। यह द्वितीयानुगत अर्थात् आनन्दानुगत और अस्मितानुगत दोनों से व्याप्त है। चतुर्थ अस्मिता विषयक समापत्ति आनन्द विकल अस्मिता मात्र ही है, क्योंकि इसमें स्थूल-सूक्ष्म पंचभूत एवं इन्द्रियों तथा स्थैर्यगत आनन्द किसी का भी अहसास नहीं होता है। यहाँ आनन्द विकल का अर्थ आनन्दशून्य नहीं है, अपितु आनन्द से अतीत है। ग्रहण-विषयक आनन्द की अपेक्षा यह अधिक अभीष्ट शान्ति स्वरूप है। इसी प्रकार धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म की ओर अभ्यास का क्रम बढ़ाने से अन्त में सम्प्रज्ञात समाधि की चरम सीमा रूप विवेकख्याति का उदय होता है। आनन्दानुगत समाधि ग्रहण-विषयक समापत्ति है और अस्मितानुगत समाधि ग्रहीतृ-विषयक समापत्ति है। उपर्युक्त जितनी भी समाधियों का वर्णन किया गया है, वे सब सबीज समाधियाँ हैं..—

“ता एव सबीजः समाधिः”। (योगसूत्र 1.46) क्योंकि इनमें सबमें किसी न किसी स्थूल आलम्बन की अपेक्षा रहती है जिस कारण बीजभूत अज्ञान भी विद्यमान रहता है। इन समाधियों में चित्त में ध्येय वृत्ति मौजूद रहती है इसलिए इसमें चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध नहीं हुआ होता है। अतएव 'सबीज' या 'सम्प्रज्ञात समाधि' से कैवल्य की प्राप्ति नहीं होती। जैसे-जैसे साधक का चित्त निर्मल होता चला जाता है वैसे-वैसे चित्त की सारी वृत्तियाँ क्षीण होती चली जाती हैं तथा साधक समाधि की उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करता जाता है। इस प्रकार समाधि परमपुरुषार्थ की पूर्व अवस्था है। इनके सिद्ध होने के बाद ही साधक को तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है जिससे अविद्या आदि की निवृत्ति होकर मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति होती है।

बोध, अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न 01

क) सम्प्रज्ञात समाधि के कितने भेद हैं?

(अ) 2 (ब) 4

(द) 3 (स) 5

ख) निम्नलिखित में से योग कितने अङ्गों वाला है?

(अ) 8 (ब) 3

(द) 9 (स) 7

ग) योगदर्शन के प्रणेता कौन हैं?

(अ) पाणिनि (ब) पतञ्जलि

(द) कात्यायन (स) भट्टोजिदीक्षित

बोध प्रश्न 02

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

क) ऋतम्भरा से का उदय होता है।

ख) समाधि की अवस्था में ध्याता और ध्यान हो जाते हैं।

ग) भव प्रत्यय समाधि का भेद है।

घ) सम्प्रज्ञात समाधि के भेद हैं।

अभ्यास प्रश्न

1) महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योगदर्शन में समाधि सम्प्रत्यय की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

2) सबीज एवं निर्बीज समाधि में अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

5.6 सारांश

इस इकाई के माध्यम से हमने योगदर्शन में वर्णित सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। समाधि अष्टाङ्ग योग का अंतिम एवं महत्त्वपूर्ण सोपान है। आज के समय में वैश्विक स्तर पर मानव जितनी समस्याओं से जूझ रहा है, उसके समाधान के रूप में समाधि का वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इसलिए पतञ्जलि ही नहीं, अपितु सभी विद्वानों ने एकमत से आनन्दमय मानव जीवन के लिए समाधि की उपादेयता को स्वीकार किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हमने समाधि को उसके भेदों एवं उपभेदों सहित विस्तृत रूप से जाना।

5.7 शब्दावली

उत्कृष्ट	—	उन्नत, श्रेष्ठ
ध्येय	—	ध्यान का विषय
ध्यान	—	मन की एकाग्रता
ध्याता	—	ध्यान करने वाला व्यक्ति
एकाकार	—	एक हो जाना
आलम्बन	—	आधार
निवृत्ति	—	छुटकारा, रहित होना
परिपक्व	—	पूर्ण
परिणत	—	परिवर्तित

समापत्ति	—	एकाग्रता, समाधि
विशद	—	विस्तृत
अन्तःकरण	—	चित्त, अहंकार, बुद्धि एवं मन
आत्म-विस्मृति	—	स्वयं को भूल जाना, अपने शरीर, मन आदि का अनुभव न होना
निश्चल	—	स्थिर, शान्त

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- 1 द्विवेदी डॉ. कपिलदेव, साधना एवं सिद्धि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- 2 सिन्हा, डॉ. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।
- 3 पोद्दार श्री हनुमान प्रसाद, सम्पादक, कल्याण योगांक, गीता प्रेस, गोरखपुर।
- 4 सरस्वती स्वामी विज्ञानन्द, योग विज्ञान, योग निकेतन ट्रस्ट, ऋषिकेश।
- 5 संस्कृतहिन्दी कोश, वामन शिवराम आपटे, रचना प्रकाशन, जयपुर।
- 6 पातञ्जलयोगप्रदीप, श्रीस्वामी ओमानन्द तीर्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, कोलकाता।

5.9 बोध अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 01

- क) 2
- ख) 8
- ग) पतञ्जलि

बोध प्रश्न 02

- क) विवेकख्याति
- ख) एकाकार
- ग) असम्प्रज्ञात समाधि
- घ) 2

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 6 समाधिप्राप्ति के उपाय

इकाई की रूपरेखा

- 6.0 उद्देश्य
- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 समाधि प्राप्ति के उपाय
 - 6.2.1 श्रद्धा
 - 6.2.2 वीर्य
 - 6.2.3 स्मृति
 - 6.2.4 समाधि
 - 6.2.5 प्रज्ञा
 - 6.2.6 तीव्रसंवेग
 - 6.2.7 ईश्वरप्रणिधान
- 6.3 सारांश
- 6.4 शब्दावली
- 6.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- समाधि प्राप्ति के उपाय श्रद्धा के बारे में जान सकेंगे।
- समाधि प्राप्ति के उपाय वीर्य के बारे में जान सकेंगे।
- समाधि प्राप्ति के उपाय स्मृति के बारे में जान सकेंगे।
- समाधि प्राप्ति के उपाय समाधि के बारे में जान सकेंगे।
- समाधि प्राप्ति के उपाय प्रज्ञा के बारे में जान सकेंगे।
- समाधि प्राप्ति के उपाय तीव्रसंवेग के बारे में जान सकेंगे।
- समाधि प्राप्ति के उपाय ईश्वरप्रणिधान के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पाँच योगाङ्ग तो एक प्रकार से धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए तैयारी मात्र हैं। अतः इन पाँच योगाङ्गों को बहिरंग साधन और धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्तरंग साधन कहा जाता है। यहाँ सबसे पहले यह बतला देना आवश्यक है कि योग के इन आठ अंगों के सन्दर्भ में आया समाधि पद 'सम्प्रज्ञात समाधि' का वाचक है। सम्प्रज्ञात समाधि अंग और असम्प्रज्ञात समाधि अंगी है। इस प्रकार **इकाई-06 समाधिप्राप्ति के उपाय** के अन्तर्गत

6.2 समाधि प्राप्ति के उपाय

आचार्य पतंजलि ने योगसूत्र में समाधि के बारे में कहा है कि—‘तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः’(योगसूत्र 3/2) अर्थात् जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है तब वही ध्यान ही समाधि हो जाता है। कहने का आशय यह है कि वह ध्यान ही जब ध्येय के स्वरूप मात्र का प्रकाशक होते हुए अपने अर्थात् स्वयं ध्यान के स्वरूप से शून्य सा हो जाता है तब समाधि कहलाता है। चित्त की सभी वृत्तियों के अस्त हो जाने पर संस्कार ही जिसमें शेष रहते हैं ऐसा चित्त का निरोध ‘असम्प्रज्ञात समाधि’ है। उस समाधि का उपाय ‘परवैराग्य’ है। सालम्बन अभ्यास उसका साधन नहीं बन सकता। इसलिए विरामप्रत्यय अर्थात् वृत्तियों के विराम का जो कारण पदार्थहीन परवैराग्य उसको साधन रूप में स्वीकार किया जाता है और वह (परवैराग्य) पदार्थहीन होता है। उसके अभ्यास पूर्वक चित्त निरालम्बन और स्वभावशून्य सा हो जाता है। यह निर्बीज समाधि ‘असम्प्रज्ञात’ कही जाती है। ‘उपायप्रत्यय’ नामक असम्प्रज्ञात समाधि योगियों की होती है अर्थात् विदेह और प्रकृतिलय योगियों से भिन्न योगियों की होती है। इस प्रकार आचार्य पतंजलि ने समाधि प्राप्ति के उपायों को बताते हुए कहा है कि—‘श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्’ अर्थात् दूसरे साधकों का निरोध रूप योग श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा पूर्वक सिद्ध होती है।

6.2.1 श्रद्धा

समाधि प्राप्ति का प्रथम उपाय ‘श्रद्धा’ है। श्रुत् का अर्थ सत्य है। श्रद्धा का अर्थ सत्य को धारण करने के लिये किया जाने वाला प्रयत्न तथा उसको धारण करना है। सत्य का परिज्ञान होने पर योगी उसको धारण करने की तीव्र इच्छा करता है क्योंकि वह यह जानता है कि सत्य के आचरण से उत्तम फल की प्राप्ति होती है। इसलिये वह सदा योगाभ्यास को यथाशक्ति करता है। यदि उसको योग का फल ज्ञात नहीं हो तो उसकी योग में रुचि नहीं होगी। ‘श्रद्धा’ चित्त की अभिरुचि अर्थात् तीव्र इच्छा वह माता के समान कल्याणकारिणी, योगी की रक्षा करती है। गीता में भी कहा गया है कि—

‘श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥’

(गीता, 4/39)

6.2.2 वीर्य

समाधि प्राप्ति का द्वितीय उपाय वीर्य जिसका अर्थ उत्साह होता है। उत्साह के कारण व्यक्ति कठिन कार्य को भी सरलता से सम्पादित कर लेता है और उससे उसकी अपनी शक्ति उद्बुद्ध होती है। यदि वह व्यक्ति अपने सामर्थ्य से कार्य सिद्धि नहीं कर पाता, तो वह जहाँ कहीं से भी साधनों की प्राप्ति हो सकती हो, उनके उपार्जन में पूर्ण प्रयास करता है। परन्तु उत्साहहीन व्यक्ति ऐसा नहीं करता। उत्साहरहित की अपनी विद्यमान शक्ति भी कार्य करना छोड़ देती है। उत्साही अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिये विविध बाधाओं के आने पर भी निराशावादी नहीं होता। उसको दूसरे मनुष्य भी सहायता देते हैं, उत्साहहीन को नहीं। उत्साहपूर्वक पूर्ण प्रयास करने पर साधक को ईश्वर भी सहायता देता है। इसलिये उत्साह को समाधि का साधन माना जाता है।

श्रद्धालु विवेकाभिलाषी योगी को बल (उत्साह, प्रयत्न) प्राप्त होता है।

6.2.3 स्मृति

समाधि प्राप्ति का तृतीय उपाय स्मृति है। योगाभ्यास के करने से उसके उत्तम परिणाम अनुभव में आते हैं। उन अनुभवों से संस्कार उत्पन्न होते हैं। उन संस्कारों से स्मृति उत्पन्न होती है। उस स्मृति से योगाभ्यासी अपनी उसी उत्तमावस्था को प्राप्त कर लेता है जिसको उसने पहले प्राप्त किया था। इसलिये उत्तम स्मृति समाधि का साधन है। उदाहरण जैसे कि किसी योगाभ्यासी ने मन को जड़ मानकर उसको स्थिर करने के लिये ध्यान के समय में प्रयत्न किया। उस प्रयत्न से उसको सफलता मिली। कालान्तर में मन के अस्थिर होने पर पुनः उस अनुभव से जनित स्मृति के आधार पर उसने प्रयत्न किया तो उसका मन स्थिर हो गया। इसी प्रकार योगाभ्यासी अनेक उत्तम अनुभवों से जनित स्मृति के आधार पर योग को सिद्ध करता है। इस प्रकार के बलयुक्त योगी की स्मृति अर्थात् पूर्वकाल में किये योग के अनुभवों की स्मृति उपस्थित होती है।

6.2.4 समाधि

समाधि प्राप्ति का चतुर्थ उपाय समाधि है। अभ्यास करते-करते योगी सम्प्रज्ञात समाधि की उन्नत अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यह समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि का साधन बनती है क्योंकि सम्प्रज्ञात के बिना असम्प्रज्ञात की प्राप्ति नहीं होती। ध्यान की अवस्था में तीन बातों की स्थिति होती है और उन्हीं का भान भी होता है। वे बाते हैं—ध्याता, ध्यान और ध्येय। इन्हें ही क्रमशः चित्त, चित्तवृत्ति तथा विषय कहते हैं। जब ध्यान का अभ्यास करते-करते वह ध्यान अपने स्वरूप का त्याग सा करके ध्येय के ही रूप को धारण कर लेता है, ध्येय स्वरूप ही बन जाता है, तब उसे समाधि कहते हैं। उस समय ध्यान उसी प्रकार से ध्येय विषय के रूप को धारण कर लेता है यद्यपि उस अवस्था में भी जल में लवण की स्थिति रहती है, किन्तु जल के रूप में मिल कर रहती है। इसी प्रकार समाधि के रूप को धारण कर लेने पर भी ध्यान की सत्ता रहती ही है, किन्तु ध्यान रूप से न भासित होकर ध्येय रूप से भासित होती है। यहाँ यह ध्यान रखना है कि समाधि की अवस्था में ध्यान विद्यमान रहता हुआ भी स्वरूपतः प्रतीत न होने से स्वरूप शून्य सा लगता है। यही सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि का मूल अन्तर है। यहाँ एक बात का ध्यान रखना है कि अभी ऊपर जिस समाधि का वर्णन किया गया है। वह चित्त वृत्तियों के निरोधरूप योग का साधन है—‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’ धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन योग के अन्तरंग साधन हैं। अन्तरंग साधन होने से इन तीनों का विषय एक ही होना चाहिए अर्थात् जिस विषय की धारणा हो उसी विषय का ध्यान हो और फिर उसी विषय को लेकर समाधि भी होनी चाहिए। ये तीनों ही मिल कर संयम कहलाते हैं—‘त्रयमेकत्रसंयमः’ (योगसूत्र 3/4) यह संयम योग साधना के साधक के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। समाधि की दो अवस्थाएँ हैं—सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि। इनमें से प्रथम आरंभिक अवस्था है और दूसरी अंतिम अवस्था है।

1. **सम्प्रज्ञात समाधि**—एकाग्र अवस्था को संप्रज्ञात योग कहते हैं। इसमें अभीष्ट विषय का स्पष्ट ज्ञान रहता है। इस समाधि के चार सोपान हैं—

- **सवितर्क समाधि**—इस अवस्था में किसी स्थूल विषय (जैसे नाक का अग्रभाग इत्यादि) पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।

- **सविचार समाधि**—इस अवस्था में सूक्ष्म विषय या तन्मात्र पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। स्थूल विषय के ज्ञान के बाद सूक्ष्म विषय पर चित्त लगाना पड़ता है।
- **सानंद समाधि**—सूक्ष्म वस्तुओं के बाद सूक्ष्मतर वस्तुओं (जैसे इन्द्रियों) पर ध्यान लगाना पड़ता है। यहाँ एकादश इन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेदन सुखदायक होते हैं, इसलिए इस अवस्था को सानंद समाधि कहते हैं।
- **सास्मिता समाधि**—यह समाधि की अंतिम एवं पूर्णवस्था है। यहाँ स्थूल या सूक्ष्म विषयों पर ध्यान न देकर चित्त को अहंकार पर ध्यान लगाना पड़ता है। अहंकार 'अस्मिता' है। इसीलिए इस समाधि को सास्मिता समाधि कहा जाता है। इस अवस्था में किसी विषय का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

2. **असम्प्रज्ञात समाधि**—सम्प्रज्ञात समाधि में वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो जाता है और इस विषय की चेतना भी रहती है। किन्तु असम्प्रज्ञात समाधि में साधक को किसी विषय की चेतना नहीं रहती। ध्यान का विषय भी लुप्त हो जाता है। यहाँ आत्मा विशुद्ध चैतन्य के रूप में हो जाती है। जब पुरुष अपने को विशुद्ध चैतना समझ लेता है, जब उसे प्रकृति या इसके विकारों से प्रभावित नहीं होना पड़ता। वह सांसारिक बंधनों से पूर्णतया मुक्त होकर मोक्ष या कैवल्य पा लेता है। यहाँ योगी को चरम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो जाती है। इस अवस्था में साधक विवेकज्ञान प्राप्त कर लेता है और सभी प्रकार के बंधनों एवं दुःखों से मुक्त हो जाता है।

चित्त की सभी वृत्तियों के अस्त हो जाने पर संस्कार ही जिसमें शेष रहते हैं ऐसा चित्त का निरोध 'असम्प्रज्ञात समाधि' है। उस समाधि का उपाय 'परवैराग्य' है। सालम्बन अभ्यास उसका साधन नहीं बन सकता। इसलिए विरामप्रत्यय अर्थात् वृत्तियों के विराम का जो कारण पदार्थहीन परवैराग्य उसको साधन रूप में स्वीकार किया जाता है और वह परवैराग्य पदार्थहीन होता है। उसके अभ्यास पूर्वक चित्त निरालम्बन और स्वभावशून्य सा हो जाता है। यह निर्बीज समाधि 'असम्प्रज्ञात' कही जाती है।

विदेह नामक देवों की 'भवप्रत्यय' नामक असम्प्रज्ञात समाधि होती है। वे अपने संस्कार मात्र अवशिष्ट चित्त से कैवल्य पद जैसा अनुभव करते हुए अपने संस्कारों के अनुरूप फलों को भोगते हुए समाप्त करते हैं। उसी प्रकार प्रकृतिलय अर्थात् भवप्रत्यय नामक असम्प्रज्ञात समाधि वाले प्रकृतिलीन योगी भी अकृतकृत्य चित्त के प्रकृति में लीन होने कैवल्यपाद जैसा अनुभव करते रहते हैं, जब तक कि उनका चित्तभोग तथा अपवर्ग के सिद्ध न करने के कारण फिर से लौकिक स्थिति में नहीं आता।

6.2.5 प्रज्ञा

समाधि प्राप्ति का पंचम उपाय उत्कृष्ट 'प्रज्ञा' है। सम्प्रज्ञात समाधि की उन्नत अवस्था में उत्कृष्ट प्रज्ञा उत्पन्न होती है। उसी को प्रज्ञा विवेक कहा जाता है। इसकी सिद्धि होने पर जड़चेतन का अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा की पृथक्ता का ज्ञान होता है। उससे परवैराग्य की प्राप्ति होती है। उस परवैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि की उपलब्धि होती है। इन पाँच साधनों के ग्रहण से यम-नियमादि आठों अंगों का ग्रहण अभिप्रेत है। क्योंकि यमनियमादि अष्टांग योग के बिना असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि नहीं होती है। समाहित चित्त वाले योगी को प्रज्ञा विवेक प्राप्त होता है, जिसके द्वारा वह वस्तु को यथार्थ रूप में जान लेता है।

6.2.6 तीव्रसंवेग

समाधि प्राप्ति का अन्य उपाय तीव्र विवेक और वैराग्य वाले योगियों को समाधि की प्राप्ति और समाधि का फल अतिशीघ्र प्राप्त होता है—‘तीव्रसंवेगमासन्नः।’ यहाँ संवेग शब्द का अर्थ विवेक एवं वैराग्य है। उपाय शब्द का अर्थ अभ्यास है। समाधि प्राप्ति के ये दोनों मुख्यसाधन हैं। इन तीनों साधनों का विशेष रूप से प्रयोग करने वाला योगी शीघ्र ही समाधि लाभ प्राप्त करता है। विवेक, वैराग्य और अभ्यास को अपने सामर्थ्य के आधार पर भिन्न-भिन्न स्तर से प्रयोग करने वाले योगियों के नौ भेद नीचे लिखे जाते हैं—‘मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः’ अर्थात् मृदु अभ्यास, मृदुविवेक, मृदुवैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति अधिक काल में होती है। मृदु अभ्यास, मध्यविवेक, मध्यवैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति पूर्वोक्त काल से कुछ न्यून काल में होती है। मृदु अभ्यास, तीव्रविवेक, तीव्रवैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति पूर्वोक्त काल से कुछ न्यून में होती है। मध्य अभ्यास, मृदुविवेक, मृदुवैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति पूर्वोक्त काल कुछ न्यूनकाल में होती है। मध्य अभ्यास, मध्यविवेक, मध्य वैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति पूर्वोक्त काल से कुछ न्यूनकाल में होती है। मध्य अभ्यास, तीव्रविवेक, तीव्रवैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति पूर्वोक्त काल से कुछ न्यूनकाल में होती है। अधिमात्र अभ्यास, मृदुविवेक, मृदुवैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति पूर्वोक्त काल से कुछ न्यूनकाल में होती है। अधिमात्र अभ्यास, मध्यविवेक, मध्यवैराग्य वाले योगियों को समाधि और मोक्ष की प्राप्ति पूर्वोक्त काल से कुछ न्यूनकाल में होती है। अधिमात्र अभ्यास, तीव्रविवेक, तीव्रवैराग्य वाले योगियों को समाधि की प्राप्ति पूर्वोक्त काल से कुछ न्यूनकाल में होती है।

प्रायः योगाभ्यासियों के मन में यह जिज्ञासा रहती है कि कितने काल तक साधना करने पर समाधि और मोक्ष प्राप्ति होती है। इस विषय में सूत्रकार ने कहा है कि इनकी प्राप्ति में समय की सीमा नहीं है। इसी बात को सांख्यकार कपिलाचार्य जी ने भी कहा है कि—‘न काल नियमो वामदेववत्’ (सांख्य, 4/20)। जैसे वामदेव ने ऊँचे विवेक, वैराग्य, अभ्यास, श्रद्धा, वीर्य और यमनियमादि आठ अङ्गों के तीव्र अनुष्ठान से अल्पकाल में ही असम्प्रज्ञात समाधि और मोक्ष को प्राप्त कर लिया था। वैसे ही प्रत्येक योगाभ्यासी इनकी सिद्धि कर सकता है।

6.2.7 ईश्वरप्रणिधान

आचार्य पतंजलि ने कहा है कि ‘ईश्वरप्रणिधानाद्वा’ अर्थात् इसके अतिरिक्त ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि प्राप्त की जा सकती है। अतिशय प्रेमपूर्वक ईश्वरोपासना, शरीरादि सभी पदार्थों को ईश्वर का मानकर उसकी आज्ञानुसार उनका प्रयोग करना तथा समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पित करना और उनका कोई लौकिक फल न चाहना। इस ‘ईश्वरप्रणिधान’ से और भी शीघ्र समाधि प्राप्ति तथा समाधि का फल प्राप्त होता है।

प्रणिधान अर्थात् भक्ति विशेष से अनुकूल किया हुआ ईश्वर संकल्पमात्र से उस योगी को अनुगृहीत करता है, योगी को सहायता देता है। उस ईश्वर की संकल्प द्वारा दी हुई सहायता से भी योगी को अतिशीघ्र समाधि की प्राप्ति और समाधि का फल मिलता है।

ईश्वरप्रणिधान से समाधि और उसका फल बहुत शीघ्र प्राप्त होता है, यह बात इस सूत्र में कही गई है। ‘ईश्वरप्रणिधान’ क्या है और ईश्वर प्रणिधान की सिद्धि कैसे होती है,

इसका परिज्ञान योगाभ्यासी को अवश्य ही कर लेना चाहिये। योगदर्शन में समाधि प्राप्ति के साधनों में अनेक बार ईश्वरप्रणिधान का उल्लेख किया गया है। इसका कारण यह है कि यह योग का विशेष साधन है।

ईश्वरप्रणिधान के सम्पादन के लिये प्रथम शब्दप्रमाण और अनुमानप्रमाण से ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को अच्छे प्रकार से जान लेना चाहिये क्योंकि इसके बिना ईश्वरप्रणिधान सिद्ध नहीं हो सकता है। उसका स्वरूप ज्ञात होने पर उसके मुख्य नाम को भी जानना चाहिये। ईश्वर वाच्य है और उसका प्रकाश, कथन और वर्णन करने वाला शब्द वाचक है। इस वाच्य पदार्थ ईश्वर और वाचक नाम ओ३म् का परस्पर वाच्य-वाचक सम्बन्ध है, ऐसा समझ लेना चाहिये। उदाहरण-जैसे गौ 'प्राणी' वाच्य है और गौ 'शब्द' उसका वाचक है।

साधक को यह भी जानना चाहिये कि शरीर, इन्द्रियाँ और विविध पदार्थों की रचना ईश्वर ने की है। जीवात्मा और प्रकृति इस सृष्टि की रचना नहीं कर सकते। सृष्टि के सभी पदार्थों का स्वामी भी ईश्वर है। हम इन सब पदार्थों के गौण स्वामी हैं और प्रयोग के अधिकारी हैं। जो चेतन जीवात्माएँ और संसार के जड़ पदार्थ हमारी रक्षा करते हैं, वे ईश्वरप्रदत्त सामर्थ्य से ही करते हैं, केवल अपने सामर्थ्य से नहीं। संसार के पदार्थों में जो सुख है वह क्षणिक है और उसमें दुःख मिश्रित है। शरीरादि पंचभौतिक वस्तुएँ तथा पृथ्वी आदि लोक-लोकान्तर सब नाशवान् हैं। इस प्रकार ईश्वर, जीव, प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थों के विषय में जानने से संसार के स्थूल एवं सूक्ष्म सभी पदार्थों से वैराग्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक को ईश्वर ही सर्वोपरि दिखाई देता है, वह अपने पास विद्यमान सब सामर्थ्य को ईश्वर प्रदत्त मानता है और उसकी प्राप्ति के लिये लालायित हो जाता है। जैसे कोई छोटा बालक किसी जनसमुदाय में माता से वियुक्त हो जाता है तो माता की प्राप्ति न होने पर सब कुछ को छोड़कर उसकी गवेषणा के लिये लालायित हो जाता है, वैसे ही ईश्वर प्रणिधान में योगी की ऐसी ही अवस्था होती है। यह है ईश्वरप्रणिधान अर्थात् ईश्वर की विशेष भक्ति।

जब योगाभ्यासी ईश्वर की गवेषणा करता है तो ईश्वर के नाम का अर्थ सहित जप करता है और स्वयं को ईश्वर समर्पित करता है। उसकी पात्रता के आधार पर अर्थात् पात्र सिद्ध हो जाने पर, ईश्वर योगी को विशेष सहायता प्रदान करके अपने स्वरूप का साक्षात्कार करवा देता है। इसी रहस्य को उपनिषत्कार ऋषि ने कहा है कि जिसको यह ईश्वर पात्र समझ कर वरण कर लेता है, वही उसका साक्षात्कार कर सकता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैव आत्मा वृणुते तनूस्वाम्॥

(मुण्डकोपनिषद्, 3/2/3)

बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।

- I. समाधि प्राप्ति के उपाय क्या हैं। (श्रद्धा/श्रम)
- II. सत्य को धारण करने के लिए किये जाने वाला प्रयत्न क्या है। (श्रद्धा/विवेक)
- III. तीव्र संवेगामासन्न में संवेग का अर्थ क्या है। (विवेक एवं वैराग्य/अभ्यास एवं वैराग्य)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- I. ईश्वर प्रणिधान से प्राप्तिकी होती है। (श्रद्धा/समाधि)
- II. सम्प्रज्ञात समाधिहै। (अंग/अंगी)
- III. समाधि के भेद है। (दो/चार)

बोध प्रश्न-2

1. समाधि प्राप्ति के उपाय ईश्वर प्रणिधान को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. समाधि प्राप्ति के उपाय वीर्य और स्मृति को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

समाधि प्राप्ति के उपायों को स्पष्ट कीजिए।

6.3 सारांश

समाधि प्राप्ति के कई उपाय बताये गये हैं जिसमें किसी भी साधन में प्रवृत्त होने का और अविचल भाव से उसमें लगे रहने का मूल कारण श्रद्धा है। इसलिए सूत्रकार ने श्रद्धा को प्रथम स्थान दिया है। श्रद्धा के साथ साधक में वीर्य अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीर का सामर्थ्य भी परमावश्यक होता है क्योंकि इसी से साधक का उत्साह बढ़ जाता है। श्रद्धा और वीर्य इन दोनों का संयोग मिलने पर साधक का स्मरण शक्ति बलवती हो जाती है तथा उसमें योग साधन के संस्कारों का ही बार-बार प्राकट्य होता रहता है, अतः उसका मन विषयों से विरक्त होकर समाहित हो जाता है अर्थात् समाधि में चला जाता है। इससे अन्तःकरण स्वच्छ हो जाने पर साधक की बुद्धि ऋतम्भरा सत्य को धारण करने वाली हो जाती है। इसी बुद्धि का नाम समाधि प्रज्ञा है। इसलिए परवैराग्य की प्राप्ति पूर्वक साधक का निर्बीज समाधि रूप योग सिद्ध हो जाता है। इसके अलावा जिन पुरुषों का साधन तेजी से चलता है उनका भी योग सिद्ध हो जाता है और ईश्वर प्रणिधान से भी निर्बीज समाधि की सिद्धि शीघ्र हो जाती है। इस प्रकार इकाई-06 समाधिप्राप्ति के उपाय के अन्तर्गत श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा, तीव्रसंवेग तथा ईश्वरप्रणिधान का अध्ययन किया गया।

6.4 शब्दावली

श्रद्धा	—	विश्वास
वीर्य	—	पराक्रम
स्मृति	—	बुद्धि
राग	—	प्रेम
प्रज्ञा	—	बुद्धि

6.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातंजल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातंजल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पंत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. (i) श्रद्धा (ii) श्रद्धा (iii) विवेक एवं वैराग्य
2. (i) समाधि (ii) अंग (iii) दो

बोध प्रश्न-2

- 1- आचार्य पतंजलि ने कहा है कि 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' अर्थात् इसके अतिरिक्त ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि प्राप्त की जा सकती है। अतिशय प्रेमपूर्वक ईश्वरोपासना, शरीरादि सभी पदार्थों को ईश्वर का मानकर उसकी आज्ञानुसार उनका प्रयोग करना तथा समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पित करना और उनका कोई लौकिक फल न चाहना। इस 'ईश्वरप्रणिधान' से और भी शीघ्र समाधि प्राप्ति तथा समाधि का फल प्राप्त होता है।

प्रणिधान अर्थात् भक्ति विशेष से अनुकूल किया हुआ ईश्वर संकल्पमात्र से उस योगी को अनुगृहीत करता है, योगी को सहायता देता है। उस ईश्वर की संकल्प द्वारा दी हुई सहायता से भी योगी को अतिशीघ्र समाधि की प्राप्ति और समाधि का फल मिलता है।

ईश्वरप्रणिधान से समाधि और उसका फल बहुत शीघ्र प्राप्त होता है, यह बात इस सूत्र में कही गई है। 'ईश्वरप्रणिधान' क्या है और ईश्वर प्रणिधान की सिद्धि कैसे होती है, इसका परिज्ञान योगाभ्यासी को अवश्य ही कर लेना चाहिये। योगदर्शन में समाधि प्राप्ति के साधनों में अनेक बार ईश्वरप्रणिधान का उल्लेख किया गया है। इसका कारण यह है कि यह योग का विशेष साधन है।

ईश्वरप्रणिधान के सम्पादन के लिये प्रथम शब्दप्रमाण और अनुमानप्रमाण से ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को अच्छे प्रकार से जान लेना चाहिये क्योंकि इसके बिना ईश्वरप्रणिधान सिद्ध नहीं हो सकता है। उसका स्वरूप ज्ञात होने पर उसके मुख्य नाम को भी जानना चाहिये। ईश्वर वाच्य है और उसका प्रकाश, कथन और वर्णन करने वाला शब्द वाचक है। इस वाच्य पदार्थ ईश्वर और वाचक नाम ओइम् का परस्पर वाच्य-वाचक सम्बन्ध है, ऐसा समझ लेना चाहिये। उदाहरण-जैसे गौ 'प्राणी' वाच्य है और गौ 'शब्द' उसका वाचक है।

2- वीर्य—समाधि प्राप्ति का द्वितीय उपाय वीर्य जिसका अर्थ उत्साह होता है। उत्साह के कारण व्यक्ति कठिन कार्य को भी सरलता से सम्पादित कर लेता है और उससे उसकी अपनी शक्ति उद्बुद्ध होती है। यदि वह व्यक्ति अपने सामर्थ्य से कार्य सिद्धि नहीं कर पाता, तो वह जहाँ कहीं से भी साधनों की प्राप्ति हो सकती हो, उनके उपार्जन में पूर्ण प्रयास करता है। परन्तु उत्साहहीन व्यक्ति ऐसा नहीं करता। उत्साहरहित की अपनी विद्यमान शक्ति भी कार्य करना छोड़ देती है। उत्साही अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिये विविध बाधाओं के आने पर भी निराशावादी नहीं होता। उसको दूसरे मनुष्य भी सहायता देते हैं, उत्साहहीन को नहीं। उत्साहपूर्वक पूर्ण प्रयास करने पर साधक को ईश्वर भी सहायता देता है। इसलिये उत्साह को समाधि का साधन माना जाता है। श्रद्धालु विवेकाभिलाषी योगी को बल (उत्साह, प्रयत्न) प्राप्त होता है।

स्मृति—समाधि प्राप्ति का तृतीय उपाय स्मृति है। योगाभ्यास के करने से उसके उत्तम परिणाम अनुभव में आते हैं। उन अनुभवों से संस्कार उत्पन्न होते हैं। उन संस्कारों से स्मृति उत्पन्न होती है। उस स्मृति से योगाभ्यासी अपनी उसी उत्तमावस्था को प्राप्त कर लेता है जिसको उसने पहले प्राप्त किया था। इसलिये उत्तम स्मृति समाधि का साधन है। उदाहरण जैसे कि किसी योगाभ्यासी ने मन को जड़ मानकर उसको स्थिर करने के लिये ध्यान के समय में प्रयत्न किया। उस प्रयत्न से उसको सफलता मिली। कालान्तर में मन के अस्थिर होने पर पुनः उस अनुभव से जनित स्मृति के आधार पर उसने प्रयत्न किया तो उसका मन स्थिर हो गया। इसी प्रकार योगाभ्यासी अनेक उत्तम अनुभवों से जनित स्मृति के आधार पर योग को सिद्ध करता है। इस प्रकार के बलयुक्त योगी की स्मृति अर्थात् पूर्वकाल में किये योग के अनुभवों की स्मृति उपस्थित होती होती है।

अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 7 ईश्वर की अवधारणा विषयक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 उद्देश्य
- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 ईश्वर का स्वरूप
 - 7.2.1 क्लेश रहित ईश्वर है
 - 7.2.2 निष्काम कर्म करने वाला ईश्वर है
 - 7.2.3 ईश्वर कर्म फल का भोग नहीं करता है
 - 7.2.4 कर्म संस्कारों का समुदाय का नाम आशय है
- 7.3 ईश्वर की विशेषता
 - 7.3.1 निरतिशयज्ञान से युक्त पुरुष विशेष है
 - 7.3.2 पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है
- 7.4 ईश्वर का नाम एवं उनकी प्रयोग विधि
- 7.5 सारांश
- 7.6 शब्दावली
- 7.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- ईश्वर का स्वरूप क्लेश रहित, निष्काम कर्म करने वाला और कर्म फल का अभोक्ता के बारे में जान सकेंगे।
- ईश्वर की विशेषता, निरतिशयज्ञान से युक्त पुरुष विशेष और पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है के बारे में जान सकेंगे।
- ईश्वर का नाम एवं उनकी प्रयोग विधि के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

योग दर्शन में ईश्वर का स्थान अत्यंत महत्वशाली है। यह दर्शन सांख्य के 25 तत्त्वों को अंगीकार करके उनमें एक ईश्वर को जोड़कर 26 तत्व मानता है। इसलिए योग सेश्वर सांख्य कहलाता है। योग का ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण है। प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है। ईश्वर की प्रेरणा से ही प्रकृति—पुरुष का संयोग संभव हो पाता है। इस प्रकार **इकाई—07 ईश्वर की अवधारणा विषयक विवेचन** के अन्तर्गत ईश्वर का स्वरूप क्लेश रहित, निष्काम कर्म करने वाला और कर्म फल का अभोक्ता तथा उसकी विशेषता के रूप में वह निरतिशयज्ञान से युक्त पुरुष विशेष और पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है और ईश्वर का नाम एवं उनकी प्रयोग विधि का अध्ययन किया जायेगा।

7.2 ईश्वर का स्वरूप

पुरुष शब्द से ईश्वर और जीवात्मा दोनों का ग्रहण होता है। यहाँ पर ईश्वर को पुरुष विशेष कहा है। इससे पूर्व सूत्र में ईश्वरप्रणिधान से समाधि की शीघ्र प्राप्ति बतलाई है। परन्तु जब तक साधक ईश्वर के स्वरूप को शब्दप्रमाण अथवा अनुमान प्रमाण से अच्छी प्रकार से नहीं जानता तब तक ईश्वरप्रणिधान नहीं कर सकता। इसलिये सूत्रकार ने ईश्वर का लक्षण करते हुए कहा है कि—‘क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः’ अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय इन चारों से जो सम्बन्धित नहीं है तथा जो समस्त पुरुषों से उत्तम है, वह ईश्वर है।

7.2.1 क्लेश रहित ईश्वर है

जो क्लेशों से रहित है, वह ईश्वर है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। जो जीवों को दुःख देते हैं वे क्लेश कहे जाते हैं। संसार में जितने भी मनुष्य, पशु आदि देहधारी प्राणी हैं, उन सबके दुःख का कारण मुख्यरूपेण ये क्लेश हैं। जब जीवात्मा योगाभ्यास से मोक्ष प्राप्त कर लेता है, तब एक सीमितकाल पर्यन्त इन क्लेशों से छूट जाता है। परन्तु मोक्ष की अवधि समाप्त होने पर पुनः मुक्ति की प्राप्ति से पूर्व संचित अपने शेष कर्म तुल्य पाप पुण्य के आधार पर ईश्वर की व्यवस्था से संसार में जन्म लेता है। जन्म लेने पर पुनः क्लेश दुःख देने लगते हैं। इस प्रकार से जीवात्मा कभी क्लेशयुक्त और कभी क्लेशमुक्त होता रहता है। परन्तु ईश्वर कभी भी क्लेशयुक्त नहीं होता। ऐसा ईश्वर जीवों से पृथक् पुरुषविशेष है।

7.2.2 निष्काम कर्म करने वाला ईश्वर है

चेष्टा विशेष का नाम कर्म है। कर्म दो प्रकार के हैं—सकाम और निष्काम। सकाम कर्म के तीन भेद हैं—शुभ, अशुभ और मिश्रित। जीवात्मा शुभ, अशुभ और मिश्रित कर्म करता रहता है। जो सकाम शुभ, अशुभ और मिश्रित कर्म कभी भी नहीं करता, सदा निष्कामकर्म ही करता है, वह ईश्वर है। सूत्र में कर्म शब्द के प्रयोग से यह नहीं समझना चाहिये के ईश्वर कोई भी कर्म नहीं करता। ईश्वर कर्म करता है और सदा शुभकर्म ही करता है किन्तु अशुभ कर्म नहीं करता। यदि ईश्वर कर्म न करे तो सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और जीवों को कर्मानुसार फल देना आदि कार्य सिद्ध नहीं हो सकते।

7.2.3 ईश्वर कर्म फल का भोग नहीं करता है

कर्मों के फल को विपाक कहते हैं। जीवात्माएँ शुभाशुभ और मिश्रित कर्मों के फलों को सुख—दुःख रूप में भोगती हैं। जो कर्मों के सुख—दुःख फलों को भोगती हैं, अतः संस्कारयुक्त होती हैं। ईश्वर सुख—दुःख का भोग कभी नहीं करता। अतः उसमें ऐसे संस्कार भी नहीं बनते।

7.2.4 कर्म संस्कारों के समुदाय का नाम आशय है

ईश्वर में अनन्तज्ञान, अनन्तबल, अनन्त आनन्द, अनन्तक्रिया है। यह उसका ऐश्वर्य है। जैसा उसका ऐश्वर्य है वैसा ऐश्वर्य न जीवों का, न प्रकृति का और न विकृति का है। जब समान ऐश्वर्य नहीं है तो उससे अधिक तो हो ही नहीं सकता। ईश्वर के अनन्त ऐश्वर्य की सिद्धि अनुमान प्रमाण से भी होती है। इस सृष्टि की रचना को देखने से यह ज्ञात होता है कि इसके रचयिता में अनन्तज्ञान, अनन्तबल और अनन्तक्रिया है क्योंकि उस प्रकार के सामर्थ्य के बिना संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और जीवों के

कर्मफल की व्यवस्था नहीं हो सकती।

कोई यह कह सकता है कि यह सृष्टि अनादिकाल से जैसी की तैसी चली आ रही है इसका बनाने वाला कोई नहीं है। इसका समाधान यह है कि जो वस्तु तोड़ने से टूट जाती है, वह अनादि नहीं हो सकती। जैसे-शरीर, वृक्षादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं वैसे ही सृष्टि उत्पन्न और नष्ट होती है। यह न अनादिकाल से जैसी की तैसी चली आ रही है और न ऐसी ही रहेगी। इसलिए इस संसार का बनाने वाला अनन्त ऐश्वर्यवान् ईश्वर है।

कोई यह भी कह सकता है कि इस सृष्टि का एक उपादानकारण है, उसको सांख्यदर्शन की भाषा में प्रकृति अर्थात् सत्त्व-रजस्-तमस् नामक सूक्ष्म पदार्थ कहते हैं। उन्हीं सूक्ष्म पदार्थों से सृष्टि की रचना होती है। उनमें सृष्टि बनाने का स्वभाव है, उनसे इस सृष्टि की उत्पत्ति हो जाती है। अतः अनन्त ऐश्वर्य वाले ईश्वर के मानने की आवश्यकता नहीं है। इसका समाधान यह है कि जिन सूक्ष्मपदार्थों से यह सृष्टि बनी है, वे जड़ पदार्थ हैं अर्थात् ज्ञानरहित हैं। ज्ञानरहित होने से विचारपूर्वक वे सब मिलकर जीवों के प्रयोजनों को जानकर उनके लिये अनुकूल विभिन्न प्रकार के संसार को नहीं बना सकते। जैसे किस मिट्टी के अणु विचारपूर्वक मिलकर यह योजना बनायें कि हम मिलकर ईंट बनाकर ऐसे भवन का निर्माण करेंगे जिससे अनेक मनुष्यों को सुख की प्राप्ति होगी। ऐसा नहीं हो सकता। इसी प्रकार से लोहे के सूक्ष्मकण मिलकर स्वयं विमान नहीं बन सकते। ऐसा नहीं हो सकता। घड़ी आदि बुद्धिपूर्वक निर्मित जितनी भी वस्तुएँ हैं उन सब के निर्माता चेतन जीव शरीर धारी होते हैं, वे सब पदार्थ अपने आप नहीं बनते। अतः अनन्त ऐश्वर्यवान् एक चेतन पदार्थ सृष्टि का कर्ता है।

कोई यह कह सकता है कि अनेक जीवात्माएँ मिलकर अपने सामर्थ्य से संसार की रचना कर लेंगे। ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है। इसका समाधान यह है कि प्रथम सृष्टि की रचना होती है। पश्चात् शरीरों की रचना होती है। उन शरीरों में रहकर अग्नि, जल, वायु, अन्न आदि अनेक पदार्थों की सहायता से शरीरधारी जीव कुछ वस्तुओं का निर्माण करते हैं। सृष्टि की रचना से पूर्व वे कुछ भी नहीं कर सकते। अतः सृष्टिकर्ता ईश्वर का मानना आवश्यक है।

कुछ लोगों की यह मान्यता है कि ईश्वर के सान्निध्य से सृष्टि स्वयं बन जाती है, ईश्वर कुछ नहीं करता। यह मान्यता ठीक नहीं है। क्योंकि बुद्धिपूर्वक रचना के लिये ज्ञान और बल का सहयोग अनिवार्य है। यदि ईश्वर अपने ज्ञान और बल का प्रयोग न करे तो सृष्टि की रचना सान्निध्यमात्र से कभी नहीं हो सकती। इसलिये सृष्टिकर्ता ईश्वर ही को मानना अनिवार्य है।

7.3 ईश्वर की विशेषता

ईश्वर की प्रथम विशेषता निरतिशय ज्ञान से युक्त होना तथा द्वितीय विशेषता वह पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि ईश्वर ज्ञान की अवधि है, उसका ज्ञान सबसे बढ़कर है, उसके ज्ञान से बढ़कर किसी का भी ज्ञान नहीं है इसलिए उसे निरतिशय कहा गया है। क्योंकि वह धर्म, वैराग्य, यश और ऐश्वर्य आदि की पराकाष्ठा का आधार भी है तथा सर्ग के आदि में उत्पन्न होने के कारण द्वितीय विशेषता के रूप में सबका गुरु माना जाता है। परन्तु उसका काल से अवच्छेद है क्योंकि गीता में भी कहा गया है कि—

अर्थात् मैं ही सम्पूर्ण जगत् का धाता अर्थात् धारण करने वाला, पिता अर्थात् पालन करने वाला, माता अर्थात् उत्पन्न करने वाला, पितामह अर्थात् मूल उद्गम हूँ जिसमें सभी प्रवेश पाते हैं और जानने योग्य पवित्र ओंकार अर्थात् ‘अहं आकारं इति ओंकारः’ वह परमात्मा मेरे स्वरूप है। सोऽहं, तत्त्वमसि इत्यादि एक दूसरे के पर्याय हैं ऐसा जानने योग्य स्वरूप मैं ही हूँ। ऋक् अर्थात् सम्पूर्ण प्रार्थना, साम अर्थात् समत्व दिलाने वाली प्रक्रिया, यजुः अर्थात् यजन् की विधि विशेष भी मैं ही हूँ। योग अनुष्ठान के उक्त तीनों आवश्यक अंग मुझसे होते हैं।

7.3.1 निरतिशयज्ञान से युक्त पुरुष विशेष है

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर की विशेषता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—‘तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्’ अर्थात् उस ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज अर्थात् ज्ञान निरतिशय है। कहने का आशय यह है कि निरतिशयज्ञान के द्वारा पुरुष विशेष को ‘ईश्वर’ का स्वरूप बतलाया गया है। संसार में ज्ञान की दृष्टि से मनुष्यों के स्तर भिन्न-भिन्न देखे जाते हैं। किसी व्यक्ति का ज्ञान अल्प है, दूसरे का ज्ञान उससे अधिक और तीसरे का ज्ञान उससे भी अधिक है। इस ज्ञान को सातिशयज्ञान कहते हैं। यही सर्वज्ञता का बीज है। यह ज्ञान बढ़ते-बढ़ते ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है कि जिससे बढ़कर आगे अन्य कोई ज्ञान हो ही नहीं सकता। ऐसे ज्ञान का नाम निरतिशय है। जिसमें यह ज्ञान रहता है, वह पुरुषविशेष ईश्वर सर्वज्ञ है। जैसे संसार में कुछ छोटे पदार्थ हैं, कुछ उनसे बड़े हैं और कुछ उनसे भी बड़े हैं। इस प्रकार परिमाण की दृष्टि से जिससे बढ़कर अन्य कोई भी पदार्थ न हो, वह निरतिशय कहा जायेगा। ऐसे ही ईश्वर का ज्ञान निरतिशय है। इसी प्रकार से छोटे पदार्थों में भी जो सबसे छोटा है, वह निरतिशय कहा जायेगा। ईश्वर का ज्ञान न घटता है और न बढ़ता है, क्योंकि वह स्वाभाविक है। स्वाभाविक पदार्थ कभी घटता-बढ़ता नहीं। ईश्वर जीवों के कल्याणार्थ अपना ज्ञान प्रदान करता है। उसी ईश्वरप्रदत्त ज्ञान से जीव अपने व्यवहार की सिद्धि और मोक्ष की सिद्धि करते हैं, केवल अपने स्वाभाविक ज्ञान से नहीं।

7.3.2 पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर की द्वितीय विशेषता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—‘स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।’ अर्थात् इस सूत्र में ईश्वर को पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु बतलाया है। सूत्रकथन से यह सिद्ध होता है कि वर्तमानकाल में जो गुरु हैं, उनका और भविष्यकाल में जो गुरु होंगे, उन गुरुओं का भी गुरु ईश्वर है। क्योंकि ईश्वरप्रदत्त विद्या के बिना कोई भी जीवात्मा केवल अपने स्वाभाविकज्ञान से व्यवहार की सिद्धि और मोक्ष की सिद्धि नहीं कर सकता। देहधारी गुरुओं से अथवा सृष्टि की रचना को देखकर व्यक्ति जिस ज्ञान को प्राप्त करता है। वह ज्ञान परम्परा से ईश्वर से ही आया है। वर्तमान काल में भी जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं और विधिपूर्व उसकी उपासना करते हैं, उनको भी ईश्वर ज्ञान देता है। जो भौतिक वैज्ञानिक विद्वान् बनते हैं, वे भी ईश्वर की सहायता से ही बनते हैं। परमेश्वर का ज्ञान उनको कई प्रकार से प्राप्त होता है।

7.4 ईश्वर का नाम एवं उनकी प्रयोग विधि

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर के नाम का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—‘तस्य वाचकः प्रणवः’ अर्थात् उस ईश्वर का वाचक नाम प्रणव (ओंकार) है। इस सूत्र में ‘प्रणव’ को ईश्वर का वाचक बतलाया है। ईश्वर वाच्य है और प्रणव उसका वाचक है। ‘प्र’ उपसर्गपूर्वक ‘णु’ धातु से ‘अप्’ प्रत्यय करने पर प्रणव शब्द सिद्ध होता है। **प्रकर्षेण नूयते स्तूयते अनेन इति प्रणवः** अर्थात् जिस शब्द के द्वारा उत्कृष्ट रूप से स्तुति की जाती है वह प्रणव कहलाता है। प्रणव शब्द से यहाँ पर ‘ओम्’ शब्द अभिप्रेत है। यजुर्वेद का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लिखा है कि ‘**प्रणवैः ओङ्कारैः**’ इससे स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रणव शब्द के द्वारा ओंकार कहा गया है। **अवतीति ओम्** ‘अव’ धातु से ‘ओम्’ शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ रक्षक है। ओम् का और ईश्वर का पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध है। यहाँ सम्बन्ध प्रवाह से अनादि है, स्वरूप से नहीं क्योंकि शब्द आकाश का गुण है। सांख्यदर्शन में तन्मात्राओं से आकाश की उत्पत्ति बताई गई है। इसलिये ओम् शब्द भी अनित्य है। प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर जीवों को वेदों का ज्ञान देता है। उसी काल में जीवों को यह ज्ञान भी देता है कि ओम् शब्द मेरा वाचक है और मैं उसका वाच्य हूँ। हम दोनों का वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। ओम् परमेश्वर का मुख्य नाम है। क्योंकि इस शब्द से उसके स्वरूप का विस्तार से वर्णन होता है। उसका ध्यान करते समय छोटा शब्द होने से ओम् का उच्चारण करना सरल है। ईश्वर में विद्यमान गुणों के द्वारा की जाने वाली स्तुति, प्रार्थना आदि ‘सगुण’ है और अविद्यमान गुणों के द्वारा की जाने वाली निर्गुण है। दर्शनशास्त्र ने ईश्वरप्राप्ति के किसी-किसी योगाभ्यासियों को उसके स्वरूप का वर्णन निर्गुण और सगुण रूप से किया है, जिससे उनको ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने में कठिनता न हो। क्योंकि जब साधक सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार से ईश्वर को जान लेता है तो उसके लिए सगुण, निर्गुण स्तुति, प्रार्थना, उपासना सरल हो जाती है। यहाँ यह ध्यान में रखें कि सगुण का अर्थ साकार और निर्गुण का अर्थ निराकार नहीं है।

महर्षि पतंजलि ने ईश्वर के नाम प्रयोग विधि का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—‘**तज्जपदस्तदर्थभावनम्**’ अर्थात् उस ओंकार का जप और उसके अर्थ स्वरूप परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। इस सूत्र में ओम् का जप और ओम् शब्द का जो अर्थ ईश्वर है उसके स्वरूप को विचारने का विधान है। इस विषय में **क्लेश कर्मविपाक**। सूत्रभाष्य में उल्लेख कर दिया है कि योगाभ्यासी शब्दप्रमाण अथवा अनुमानप्रमाण से प्रथम ईश्वर के स्वरूप का परिज्ञान अवश्य ही कर लेवे। क्योंकि इसके बिना विधिपूर्वक ध्यान नहीं हो सकता। ध्यान की सफलता के लिए वाच्य-वाचक सम्बन्ध को भी जान लेना चाहिए।

जप का अर्थ, जप शब्द वा वाक्य का बार-बार पाठक करना है। भावना का अभिप्राय है कि उसका जो वाच्य है, उसके गुणों का विचार करना। जैसे-साधक ने ओम् शब्द का उच्चारण किया और ओम् शब्द का जो वाच्य अर्थात् वस्तु ईश्वर है, वह सर्वरक्षक है इस प्रकार उसके गुण का विचार किया यह भावना है। जो वस्तु जैसी है, उसको वैसी ही जानना, मानना भावना है। जो वस्तु जैसी है उसको उसके विपरीत जानना, मानना भावना नहीं है अर्थात् अभावना है। संसार में अनेक साधक ईश्वरप्राप्ति के लिये प्रयासशील हैं। परन्तु ईश्वर का जैसा स्वरूप है, उसको वैसा न जानने के कारण वे उसकी प्राप्ति नहीं कर पाते।

बोध प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।
 - I. ईश्वर का नाम क्या है। (श्रद्धा/प्रणव)
 - II. क्लेश कितने प्रकार के हैं। (पाँच/तीन)
 - III. अविद्या क्या है। (क्लेश/कर्म)
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
 - I. सर्वज्ञा का बीज है। (ईश्वर/मनुष्य)
 - II. पूर्ववर्ती गुरुओं का गुरु है। (ईश्वर/मनुष्य)
 - III. कर्मों के फल को कहते हैं। (विपाक/आशय)

बोध प्रश्न-2

1. ईश्वर के प्रथम विशेषता को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. ईश्वर के नाम को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

ईश्वर विषयक अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

7.5 सारांश

योग दर्शन के अनुसार ईश्वर नित्य, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमात्मा है। वह संसार के सारे जीवों से भिन्न तथा श्रेष्ठ है। जीव का कभी न कभी क्लेशों से सम्बन्ध रहता है। वह नाना प्रकार के कर्मों का भोक्ता भी है। किन्तु ईश्वर इन सबमें कभी भी संस्पृष्ट नहीं होता और वह निरतिशयज्ञान से युक्त है तथा पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है। उसका वाचक प्रणव है तथा उसका जप उसके अर्थ स्वरूप परमेश्वर का चिन्तन करते हुए जपना चाहिए। इस प्रकार **इकाई-07 ईश्वर की अवधारणा विषयक विवेचन** के अन्तर्गत ईश्वर का स्वरूप क्लेश रहित, निष्काम कर्म करने वाला और कर्म फल का अभोक्ता तथा उसकी विशेषता के रूप में वह निरतिशयज्ञान से युक्त पुरुष विशेष और पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है और ईश्वर का नाम एवं उनकी प्रयोग विधि का अध्ययन किया गया।

7.6 शब्दावली

क्लेश	—	कष्ट
अविद्या	—	अज्ञान
अस्मिता	—	अहंकार
राग	—	प्रेम
द्वेष	—	ईर्ष्या

7.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातंजल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातंजल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पंत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. (i) प्रणव(ii) पाँच (iii) क्लेश
2. (i) ईश्वर (ii) ईश्वर(iii) विपाक

बोध प्रश्न-2

1. महर्षि पतंजलि ने ईश्वर की विशेषता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—‘तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्’ अर्थात् उस ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज अर्थात् ज्ञान निरतिशय है। कहने का आशय यह है कि निरतिशयज्ञान के द्वारा पुरुष विशेष को ‘ईश्वर’ का स्वरूप बतलाया गया है। संसार में ज्ञान की दृष्टि से मनुष्यों के स्तर भिन्न-भिन्न देखे जाते हैं। किसी व्यक्ति का ज्ञान अल्प है, दूसरे का ज्ञान उससे अधिक और तीसरे का ज्ञान उससे भी अधिक है। इस ज्ञान को सातिशयज्ञान कहते हैं। यही सर्वज्ञता का बीज है। यह ज्ञान बढ़ते-बढ़ते ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है कि जिससे बढ़कर आगे अन्य कोई ज्ञान हो ही नहीं सकता। ऐसे ज्ञान का नाम निरतिशय है। जिसमें यह ज्ञान रहता है, वह पुरुषविशेष ईश्वर सर्वज्ञ है। जैसे संसार में कुछ छोटे पदार्थ हैं, कुछ उनसे बड़े हैं और कुछ उनसे भी बड़े हैं। इस प्रकार परिमाण की दृष्टि से जिससे बढ़कर अन्य कोई भी पदार्थ न हो, वह निरतिशय कहा जायेगा। ऐसे ही ईश्वर का ज्ञान

निरतिशय है। इसी प्रकार से छोटे पदार्थों में भी जो सबसे छोटा है, वह निरतिशय कहा जायेगा। ईश्वर का ज्ञान न घटता है और न बढ़ता है, क्योंकि वह स्वाभाविक है। स्वाभाविक पदार्थ कभी घटता-बढ़ता नहीं। ईश्वर जीवों के कल्याणार्थ अपना ज्ञान प्रदान करता है। उसी ईश्वरप्रदत्त ज्ञान से जीव अपने व्यवहार की सिद्धि और मोक्ष की सिद्धि करते हैं, केवल अपने स्वाभाविक ज्ञान से नहीं।

2. महर्षि पतंजलि ने ईश्वर के नाम का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—‘तस्य वाचकः प्रणवः’ अर्थात् उस ईश्वर का वाचक नाम प्रणव (ओंकार) है। इस सूत्र में ‘प्रणव’ को ईश्वर का वाचक बतलाया है। ईश्वर वाच्य है और प्रणव उसका वाचक है। ‘प्र’ उपसर्गपूर्वक ‘णु’ धातु से ‘अप्’ प्रत्यय करने पर प्रणव शब्द सिद्ध होता है। प्रकर्षेण नूयते स्तूयते अनेन् इति प्रणवः अर्थात् जिस शब्द के द्वारा उत्कृष्ट रूप से स्तुति की जाती है वह प्रणव कहलाता है। प्रणव शब्द से यहाँ पर ‘ओम्’ शब्द अभिप्रेत है। यजुर्वेद का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लिखा है कि ‘प्रणवैः ओङ्कारैः’ इससे स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रणव शब्द के द्वारा ओंकार कहा गया है। अवतीति ओम् ‘अव’ धातु से ‘ओम्’ शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ रक्षक है। ओम् का और ईश्वर का पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध है। यहाँ सम्बन्ध प्रवाह से अनादि है, स्वरूप से नहीं क्योंकि शब्द आकाश का गुण है। सांख्यदर्शन में तन्मात्राओं से आकाश की उत्पत्ति बताई गई है। इसलिये ओम् शब्द भी अनित्य है। प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर जीवों को वेदों का ज्ञान देता है। उसी काल में जीवों को यह ज्ञान भी देता है कि ओम् शब्द मेरा वाचक है और मैं उसका वाच्य हूँ। हम दोनों का वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। ओम् परमेश्वर का मुख्य नाम है। क्योंकि इस शब्द से उसके स्वरूप का विस्तार से वर्णन होता है। उसका ध्यान करते समय छोटा शब्द होने से ओम् का उच्चारण करना सरल है। ईश्वर में विद्यमान गुणों के द्वारा की जाने वाली स्तुति, प्रार्थना आदि ‘सगुण’ है और अविद्यमान गुणों के द्वारा की जाने वाली निर्गुण है। दर्शनशास्त्र ने ईश्वरप्राप्ति के किसी-किसी योगाभ्यासियों को उसके स्वरूप का वर्णन निर्गुण और सगुण रूप से किया है, जिससे उनको ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने में कठिनता न हो। क्योंकि जब साधक सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार से ईश्वर को जान लेता है तो उसके लिए सगुण, निर्गुण स्तुति, प्रार्थना, उपासना सरल हो जाती है। यहाँ यह ध्यान में रखें कि सगुण का अर्थ साकार और निर्गुण का अर्थ निराकार नहीं है।

अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।